सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
२०१४

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

र्ष–७८, अंक–१० ₹ १२०/- वार्षिक अक्टूबर –२०१४

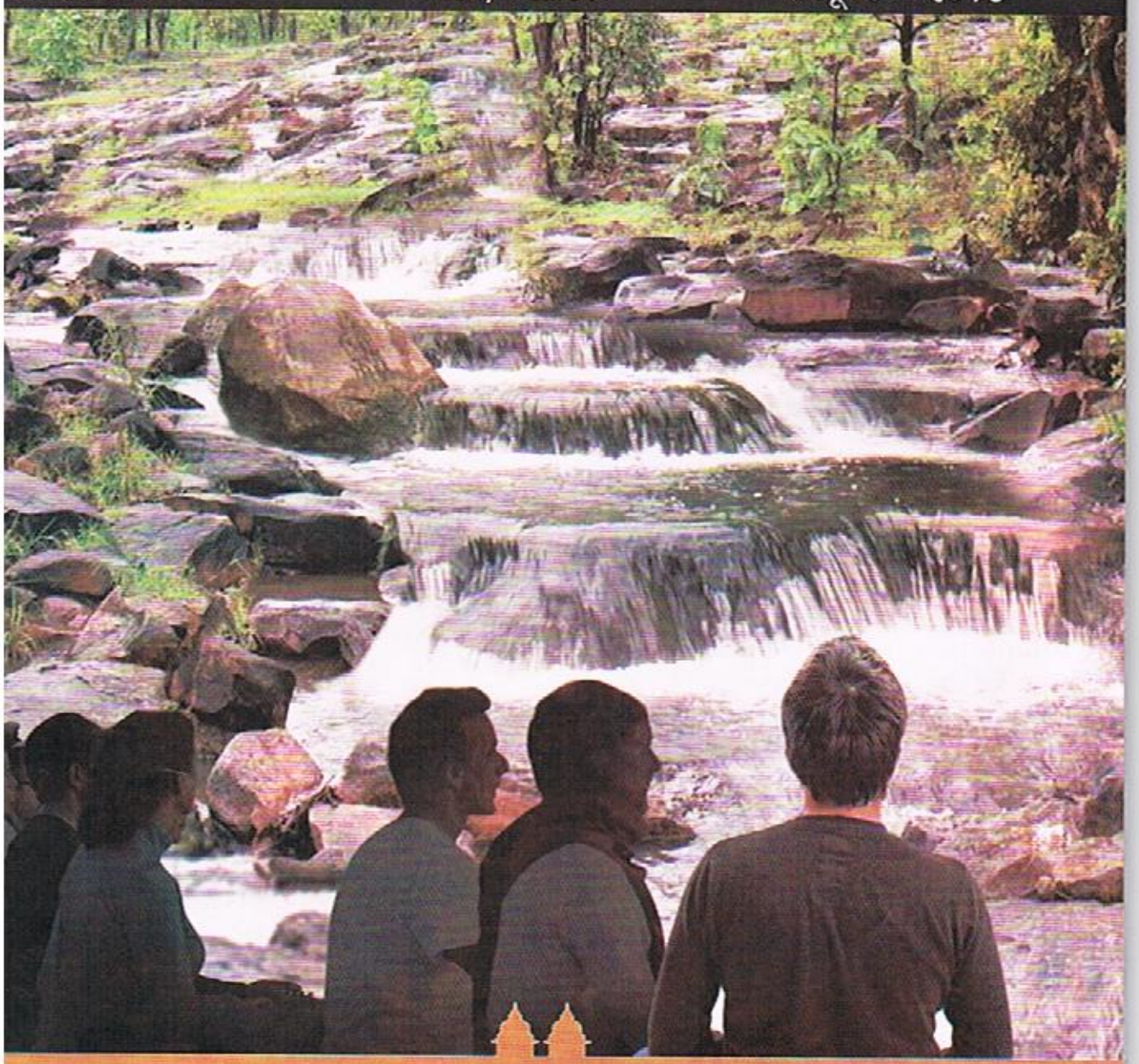

२ स्वस्थ बनें युवा, सशक्त बने राष्ट्र
६ माँ है प्रकृति, उसे दुर्गा न बनने दें
३० वरदान है एकांत, इसे अभिशाप न बनने दें
३७ भारतीय आकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं०(०५६५) २४०३९४०
२४००८६५, २४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
७५३४८१२०३७
७५३४८१२०३८
७५३४८१२०३९
फैक्स नं० (०५६५)२४१२२७३
ईमेल- ajsansthan@awgp.org
प्रातः १० से सायं ६ तक

वर्ष	:	७८
अंक	:	१०
अक्टूबर	:	२०१४
आश्विन-कार्तिक	:	२०७१
प्रकाशन तिथि	:	१.९.२०१४
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	१२०/-
विदेश में	:	१२००/-
आजीवन	:	२४००/-
(सुरक्षा निधि)		

संघर्ष

संघर्ष जीवन को परिभाषित करते हैं। जो कठिन संघर्ष में परम शांति का अनुभव करते हैं, उन्हीं ने जीने का सही ढंग सीखा है। जोखिम, खतरा या संघर्ष कुछ भी नाम दें, इसे जीने का एकमात्र ढंग यही है। जिन्होंने संघर्ष किए हैं; भयावह खतरों के बीच जिए हैं, उन्हीं का जीवन विकसित हो सका है। जिंदगी में अगर खतरे हैं, संघर्ष हैं तो समझो सब कुछ ठीक है। यदि ऐसा नहीं है, तो समझना, जरूर कहीं कुछ गलत हो रहा है।

खतरा उठाने में कोई गलत नहीं हो सकता; क्योंकि अगर कोई खतरों से हमेशा भयभीत है कि कहीं कुछ गलत हो जाएगा, तब तो न खतरा हुआ और न ही खतरों से उपजा संघर्ष। अगर हर बात की पूरी गारंटी हो और फिर खतरा उठाया जाए; सभी कुछ पहले से ही निर्धारित हो और सभी कुछ ठीक-ठाक हो, तभी संघर्ष किया जाए; तो फिर खतरा या संघर्ष हुआ ही कहाँ! खतरों में, जोखिम में, संघर्ष में गलत हो जाने की, हानि होने की पूरी संभावना होती है; तभी तो उसे खतरा, जोखिम या संघर्ष कहा जाता है। इसमें कुछ ठीक भी हो सकता है और कुछ गलत भी हो सकता है। हानि और लाभ, दोनों की संभावना जानते हुए संघर्ष करने में संकोच न करना ही संघर्ष का सौंदर्य है।

व्यक्तित्व के विकास का पथ यही है। संघर्ष करते हुए; खतरों के बीच जीते हुए; जोखिम उठाते हुए अगर कुछ गलत होगा भी, तब भी पहले जैसे बने रहना संभव नहीं है। बस, गलती के माध्यम से कुछ समझ अवश्य विकसित होगी। अगर कहीं इन सब के बीच भटकना हो भी तो जिस क्षण भटकने का बोध होगा, उसी क्षण सीखना व समझना भी प्रारंभ हो जाएगा। इसलिए संघर्षों से, खतरों से, जोखिम उठाने से कभी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। लाओत्सु के किसी शिष्य ने संघर्ष से थक-हारकर उससे पूछा—"क्या जीवन में सुख-चैन और आराम से जीना संभव नहीं है?" उत्तर में लाओत्सु ने कहा—"थोड़ा ठहरो! जब तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी, तो कब्र में तुम सदा-सदा के लिए सुख-चैन से रह सकोगे।" इसलिए जब तक जीवन है, तब तक प्रत्येक संघर्ष के लिए, हर खतरे के लिए, हर जोखिम उठाने के लिए तत्पर रहो; क्योंकि जीवित व्यक्तियों के लिए यही मार्ग है। संघर्षविहीन पथ तो केवल मुरदों के लिए है।

▶समूह साधना वर्ष◀

विषय सूची

- संघर्ष ३
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  आ गया महानायक के चरित्र को अपनाने का पर्व ५
- संभव है सूक्ष्मशरीर का जागरण ८
- कठिन है भक्ति की राह १०
- स्वस्थ बनें युवा, सशक्त बने राष्ट्र १२
- **पर्व विशेष**
  इस बार मने आत्मज्योति की दीपावली १४
- माँ है प्रकृति, उसे दुर्गा न बनने दें १६
- मरने वाला फिर जन्मेगा १८
- दुविधा छोडें, निर्णय लें २१
- कैसे बनाएँ प्यार और सहकार से भरा-पूरा परिवार २३
- सुसंस्कारी बनाए, वही है शिक्षा २५
- **आदिशक्ति की लीलाकथा—९०**
  राग-द्वेष के रूप में मधु-कैटभ का जन्म २७
- वरदान है एकांत, इसे अभिशाप न बनने दें ३०
- प्रकृति के संकेत समझते हैं पशु-पक्षी ३२
- भारतमाता के क्रांतिकारी पुजारी ३३
- विश्व का प्राचीनतम लोकतंत्र ३५
- भारतीय आकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र ३७
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—६६**
  भारतीय संस्कृति के प्रसार में संगीत की भूमिका ३९
- परोक्ष भी सच है ४२
- महान संभावनाओं का धनी मनुष्य ४३
- **अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—३**
  हृदय पर संयम से होता है, चित्त का ज्ञान ४४
- **श्रीराम भक्ति की साधना—८४**
  जब अवढरदानी बने याचक ४६
- **युगगीता—१७३**
  नीति और नियति को समझने वाले ही बनते हैं निमित्त ४८
- **चेतना की शिखर यात्रा—१४५**
  साधकों के लिए आह्वान ५२
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—२**
  (गतांक से आगे)
  मनुष्य शरीर की वास्तविक संपदाएँ ५५
- **विश्वविद्यालय परिसर से—११२**
  अनूठे विश्वविद्यालय की अनूठी परिवीक्षा ६०
- **अपनों से अपनी बात**
  प्रकाश का ही नहीं, स्वच्छता का भी पर्व है दीपावली ६२
- सद्गृहस्थ का जीवन (कविता) ६६

आवश्यक सूचना—अवश्य पढ़ें

अगस्त, २०१४ की अखण्ड ज्योति में चंदा बढ़ाने के संबंध में सूचना दी गई थी, उसकी प्रतिक्रिया परिजन-पाठकों ने खुलकर दी है। ईमेल, फोन एवं पत्र, तीनों ही माध्यम से सब ने दिल खोलकर लिखा या कहा है। परिजनों के सुझावों को ध्यान में रखते हुए अब मात्र ३०/- की वृद्धि की जा रही है। जनवरी से पत्रिका का वार्षिक चंदा १५०/- एवं आजीवन ३०००/- होगा। कागज इतना मोटा शायद न हो पाए, पर उसकी गुणवत्ता उच्चस्तरीय होगी। आशा है यह आप सभी को स्वीकार होगा। बढ़ती महँगाई ने छपाई, स्याही, पेपर, वेतन, ट्रांसपोर्टेशन आदि सभी के दाम बढ़ा दिए हैं। अतः विवशतावश यह वृद्धि करनी पड़ी है। बढ़ी हुई नई दरें जनवरी, २०१५ की पत्रिका से लागू होंगी।

अक्टूबर-नवंबर, २०१४ के पर्व-त्योहार

गुरुवार	०२	अक्टूबर	गांधी जयंती/ शास्त्री जयंती	बुधवार	२२ अक्टूबर	रूप चतुर्दशी (चेतना दिवस)
शुक्रवार	०३	अक्टूबर	विजयादशमी	गुरुवार	२३ अक्टूबर	दीपावली
शनिवार	०४	अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी 'स्मा०'	शुक्रवार	२४ अक्टूबर	अन्नकूट, बेसतुवरस
मंगलवार	०७	अक्टूबर	शरद पूर्णिमा	शनिवार	२५ अक्टूबर	भाईदूज
बुधवार	०८	अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती/चंद्रग्रहण	बुधवार	२९ अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
शनिवार	११	अक्टूबर	करवा चौथ	सोमवार	०३ नवंवर	देव प्रबोधिनी एकादशी
बुधवार	१५	अक्टूबर	अहोई अष्टमी व्रत	गुरुवार	०६ नवंबर	गुरुनानक जयंती
रविवार	१९	अक्टूबर	रमा एकादशी	शुक्रवार	१४ नवंबर	बालदिवस
मंगलवार	२१	अक्टूबर	धनतेरस	मंगलवार	१८ नवंबर	उत्पत्ति एकादशी

▶समूह साधना वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

आ गया महानायक के चरित्र को अपनाने का पर्व

राम और रावण के संघर्ष का पर्व—विजयादशमी

विजयादशमी आई है, तो राम और रावण पर चर्चा भी होगी। राम और रावण अर्थात नायक व खलनायक, सद्‌गुण व दुर्गुण, भलाई व बुराई, त्याग व भोग, भावना व वासना, पोषण व शोषण—इनमें द्वंद्व चिरकाल से है। युगों से इनके संघर्ष की कथाएँ कही जा रही हैं। युग-युग में इनके संदर्भ बदले हैं, पर संघर्ष नहीं; लेकिन जिस वर्तमान में हम रह रहे हैं, वह सभी बीते युगों की अपेक्षा अति विचित्र व विलक्षण है।

आज सब तरफ खलनायक ही खलनायक नजर आते हैं। कहीं कोई नायक नहीं दिखाई देता। रावण की बर्बर निरंकुशता को रोकने वाले श्रीराम खोजने पर नहीं मिलते। शायद यही वजह है कि आज की पीढ़ी अपने नायकों की कथा, श्रीराम की कथा भूलती जा रही है। वह सिनेमा के रजत पट पर अपने काल्पनिक नायक खोजती है। सिनेमा भी इन वर्षों में काफी बदल गया है। यहाँ भी नायक को खलनायक बनना अच्छा लगने लगा है।

कहीं व्यापार न बन जाए रामकथा

जब नायक ही नहीं तो खलनायक की निरंकुशता को कौन थामे! सद्‌गुणों के लिए कौन प्रेरित करे, भलाई करना कौन सिखाए, त्याग की जीवन भाषा कौन बताए, भावना की अनुभूति कौन दे, मानवता को कौन पोषित करे! मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की कथा आज भी जब-तब सुनाई दे जाती है, पर मर्यादा के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। कहने में यह सत्य कितना ही कटु क्यों न लगे, पर यह श्रीरामकथा भी व्यापार बनकर रह गई है। इसमें भी घाटे-मुनाफे के समीकरण जोड़े जाते हैं। समझ में नहीं आता, पर लगता है कि कहीं दशानन ने अपने कालनेमि भेजकर भक्तों को गुमराह करने का कोई नया तरीका तो नहीं ढूँढ़ लिया है। इस बात को कहने का कारण मात्र इतना है कि दशानन रावण के नित नए कारनामों के शोर में राम को खोजने की सुधि किसी को भी नहीं है।

आज का सामयिक विषय—श्रीरामचरित पर चिंतन

आज का सबसे सामयिक विषय श्रीराम की खोज है। उनके चरित्र का गहराई से चिंतन हो तो शायद इस ओर कदम आगे बढ़ें। अपने सभी अधिकारों का त्याग करके पारिवारिक मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले श्रीराम; वनवासियों-जनजातियों को गले लगाने वाले श्रीराम; गीध व गिलहरी को अपने स्वजनों की तरह प्यार करने वाले श्रीराम; भीलनी शबरी के जूठे बेरों को खाने वाले श्रीराम; सुग्रीव को न्याय दिलाने के लिए महाबलशाली बालि को ललकारने वाले श्रीराम; ऋषियों-तपस्वियों व साधुजनों की पीड़ा से संवेदित व द्रवित होने वाले श्रीराम; सर्वसाधनसंपन्न रावण को अपनी आत्मसाधना के बल पर पराजित करने वाले श्रीराम। यही तो है श्रीरामचरित्र, जो आज दशानन के चर्चित कारनामों में खो गया है। (१) अनीति, (२) अन्याय, (३) अत्याचार, (४) अंधविश्वास, (५) बलात्कार, (६) भ्रष्टाचार, (७) शोषण, (८) आतंक, (९) हिंसा एवं (१०) हत्या को अपने दसों सिरों से सोचने और बीसों भुजाओं से करने वाला रावण अब सहस्त्रशीश व अनंत भुजाओं वाला हो गया है।

इसका पुतला तो हर साल जलता है, पर रावण नहीं मरता। रावण तो तब मरे, जब इसे जलाने वाले के मन में श्रीराम हों। श्रीराम के अभाव में अनगिनत व अनंत दशाननों से देश जूझ रहा है। आज नायक कहीं नहीं हैं, सब तरफ खलनायक ही खलनायक नजर आ रहे हैं। इसमें भी विचित्र विडंबना यह है कि ये सभी खलनायक नायक की वेशभूषा में नायक के संवाद बोल रहे हैं। पहले कभी किसी एक रावण ने संन्यासी का वेश धारण कर छल से सीता का हरण किया था। अब तो सब तरफ छल ही छल है। रावण की इस माया को महातपस्वी श्रीराम के बाणों के बिना काटा भी तो नहीं जा सकता। बातें और तर्क तो रावण के पास भी थे। आखिर महापंडित और वेदों का विद्वान था वह। बस, नहीं था उसके पास तो सकारात्मक जीवन; जबकि श्रीराम संपूर्णतया सकारात्मक चिंतन, चरित्र, व्यवहार व व्यक्तित्व के स्वामी थे।

धर्म और राजनीति पर छाया है संकट

उन्हें खोजना और जन-मन में प्रतिष्ठित करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। जीवन के हर क्षेत्र में एक तरह की नकारात्मकता हावी है। अपराध और अव्यवस्थाओं का इस तरह बोलबाला है कि जो कुछ सकारात्मक है भी, उसका असर नहीं दीख रहा है। जिन पर नेतृत्व करने और लोगों को दिशा देने की जिम्मेदारी है, वे खुद संन्यासी का वेश धारण करके सीताहरण करने में लगे हैं। उनके पथभ्रष्ट होने की खबरें पढ़कर ही सुबह की शुरुआत होती है।

बात चाहे राजनीति की हो या धर्म की, सब तरफ एक जैसा ही माहौल है। धर्म और अध्यात्म के नाम पर अंधविश्वास को बढ़ावा देना तो सुना था, लेकिन अब तो सारी हदें पार हो गई हैं। अपरिग्रह का संदेश देने वाले धर्मगुरु अपने लिए स्वर्णसिंहासनों का निर्माण करने में लगे हैं। पुष्पक विमान यानी कि वायुयान उनकी यात्रा का साधन है और उनके आश्रम-मठ, इन्हें देखकर तो स्वर्णपुरी लंका भी लज्जित हो जाए। ये सभी उन्हीं विकृतियों से ग्रस्त हैं, जिनसे बचने के लिए वे समाज को संदेश देते हैं।

दशानन का शाब्दिक अर्थ होता है—दस मुख वाला। अब दस मुख हैं तो इन दसों मुखों से भोग करेगा ही। व्यक्ति की पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ हैं। इन दस इंद्रियों से सदैव निरंकुश भोग करने वाला ही तो वास्तव में दशानन अथवा रावण है। क्या असीमित इच्छाओं और निरंकुश भोग-विलास के कारण आज हम स्वयं रावण अथवा खलनायक नहीं बन गए हैं ? आज देश में प्रजातंत्र मजाक बनकर रह गया है। राजनीति जनसेवा या समाजसेवा नहीं, बल्कि व्यवसाय बन गई है। राजनीति ऐसा जादुई चिराग है, जिसे छूते ही धनवर्षा होने लगती है। यहाँ पर अपराधी अपनी मनमानी करने के लिए स्वतंत्र है। उसे साफ-सुथरा करने के लिए राजनीतिक दल गंभीर नहीं हैं। प्राय: उनके द्वारा स्वयं ही हर उस पहल को रोकने की चेष्टा की जाती है, जिससे राजनीति को साफ-सुथरा किया जा सके।

लोकतंत्र को राजतंत्र न बनाएँ

आम-जन बेबस है। विचित्र है कि राजनीतिक दल लोकतंत्र के नाम पर एक किस्म का राजतंत्र विकसित कर देना चाहते हैं। मुख्यमंत्री का बेटा मुख्यमंत्री बनना ही चाहिए। इसी तरह सबसे पुरानी राजनीतिक पार्टी के अध्यक्ष के पुत्र का प्रधानमंत्री बनना उसका जन्मसिद्ध अधिकार माना जाने लगा है। ठीक यही स्थिति धर्मतंत्र में भी है। अपना परिवार, अपने वंशज, विरासत के नैसर्गिक उत्तराधिकारी समझे जाते हैं। भ्रष्टाचार की कथा कौन कहे, इसका तो अब रोज-रोज पारायण करने की प्रथा-सी हो गई है। दस-बीस करोड़ के घोटालों की तो अब चर्चा भी नहीं होती। भ्रष्टाचारियों के पुतले जलाओ तो वह अट्टहास करते हैं। किसी भी आंदोलन का कोई असर नहीं है। फिर आंदोलन करने वाले भी तो विदेशों से धन लेकर अपने विदेशी आकाओं के साथ स्वयं के स्वार्थ साधने में लगे हैं। कोई सही रास्ते पर चलना भी चाहे तो उसके आत्मसम्मान पर होते प्रहार उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं देते।

हम किसी से कम नहीं

अगर किसी राजनेता को अदालत से सजा हो भी जाए तो वह अपने किसी परिजन को स्थापित-प्रतिष्ठित कर देता है। साथ ही स्वयं भी परदे के पीछे से सक्रिय बना रहता है। राजनीति हो या नौकरशाही, भ्रष्टाचार के बारे में इनका यही कहना है—'हम किसी से कम नहीं, तुमसे तो किसी भी कीमत पर कम नहीं'। दोनों आपस में साझेदारी निभाने में भी यकीन रखते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय जैसे क्षेत्र कभी भ्रष्टाचार से मुक्त माने जाते थे। इन्हें बड़े सम्मान और आदर से देखा जाता था। आज ये क्षेत्र भी लूट-खसोट में सबसे आगे निकलने की कोशिश कर रहे हैं। रावणदहन की चर्चा में हर साल कहा जाता है—बुराई पर अच्छाई की विजय। अब इन बुराइयों का वाहक व्यक्ति भी हो सकता है और समाज भी व शासन-व्यवस्था भी। दरअसल व्यक्ति, समाज व शासन व्यवस्था अलग-अलग नहीं हैं।

ये एकदूसरे से मिले-जुले हैं, परस्पर एकदूसरे में रचे-बसे हैं। व्यक्ति से समाज बनता है और यही समाज, व्यवस्था व शासन का निर्माण करता है। आज व्यवस्था मूल्यों के लोप के जिस संकट का सामना कर रही है, उसका मूल व्यक्ति के नैतिक पतन में ही निहित है। निराशा के इस दौर में हमें प्रकाश का एक पुंज प्रकाशित करना होगा। हमें अपने निजी व सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन में ऐसे नायक की खोज करनी होगी, जो मर्यादा का ध्वजावाहक हो। जो महापराक्रमी होने पर भी अतिशय संवेदनशील हो। जो निर्बलों का बल हो, जो पुरुष होकर भी पुरुषोत्तम हो।

महानायक हैं श्रीराम

ऐसे महानायक तो बस, श्रीराम हैं—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम। उनके आदर्शों में व्यक्ति व समाज की उन्नति की राह छिपी है। श्रीराम को भी रावण का अंत करने के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। आज श्रीराम को फिर से जन-जन का नायक बनाकर उन्हीं आदर्शों को समाज में स्थापित करना पड़ेगा, जिनके आधार पर असुरता का अंत हुआ था। माना कि यह आसान काम नहीं है, लेकिन हमारी संस्कृति व सभ्यता में ही इस अंधकार को मिटाने वाले बीज निहित हैं। हम सभी को अपने अंत:करण में रावण की वृत्तियों का दहन करना होगा। इसके लिए कहीं बाहर नहीं, बल्कि अपने मन में बार-बार श्रीराम का स्मरण व चिंतन करना होगा।

राम का नाम एक बार सच्चे मन से लेकर तो देखें, सजीव हो उठती है एक ऐसी छवि, जो शीलगुण, धीर, गंभीर, न्यायप्रिय और अपने भक्तों को जरा-सा भी कष्ट न होने देने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ है। राम शब्द लिखने में जितना सुंदर है, उससे कहीं अधिक सुंदर है—इसका उच्चारण। राम कहने मात्र से शरीर व मन में अलग तरह की प्रतिक्रिया होती है, जो हमें आत्मिक शांति देती है। हजारों संत-महात्माओं ने रामनाम जपते हुए परम कल्याण को प्राप्त किया है। यह उनके महानायक व्यक्तित्व में समाहित ऊर्जा का ही चमत्कार है।

श्रीराम भले ही त्रेतायुग में जन्मे हों, पर उनकी महत्ता हर युग में रही। अपने नायकविहीन युग में तो वे और अधिक सामयिक व महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। श्रीराम सर्वगुणसंपन्न हैं। वे सत्यनिष्ठ, सहृदय, प्रेम से परिपूर्ण, मर्यादा के मानक पुरुष, पितृभक्त, मातृभक्त, एकपत्नीव्रत धारण करने वाले, गुरुभक्त, आज्ञाकारी, त्यागी व तपस्वी हैं। वे दृढ़ निश्चयी, अप्रतिम बलशाली, पुरुषार्थ के सभी रूपों में संपन्न, एक संपूर्ण नायक हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी हैं—श्रीराम। वे धैर्यवान, करुणावान और दीन-उद्धारक हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे अहल्या, विभीषण जैसों का उद्धार करते हैं। वे दीन-दलितों को सताने-मारने तथा शोषण करने वालों को पहले तो सत्पथ पर लाने का प्रयास करते हैं, पर जब राक्षसी प्रवृत्ति के लोगों के अत्याचार अति की सीमा को पार करने लगते हैं, तो वे दुष्टहंता बन जाते हैं, सागर को सोख लेने पर उतर आते हैं, बालि का छिपकर वध कर देते हैं। सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष हैं—श्रीराम। उनमें जात-पाँत, ऊँच-नीच का कोई भी भेदभाव नहीं है।

शासक के रूप में श्रीराम का कोई सानी नहीं है। वे अपने राज्य की ऐसी व्यवस्था करते हैं कि न केवल विकास-गति तीव्र होती है, बल्कि पर्यावरण भी संतुलित रहता है। तभी तो रामराज्य बीते युगों के साथ सभी युगों में आदर्श, मर्यादा, नीति, जनकल्याण व जनभावनाओं का समादर करने का मानक बनकर उभरता है। तभी आज भी राम की नायक के रूप में खोज सर्वथा समयोचित है। इस खोज में हमें एक बात अवश्य समझनी होगी कि जो श्रीराम की चाहत रखता है, उसे आराम से परहेज करना होगा।

आज का परिदृश्य ऐसा है कि हम राम नहीं चाहते, आराम चाहते हैं। लेकिन कर्त्तव्यनिष्ठ और तपस्वी राम के जीवन में आराम कहाँ था। वैसे भी आराम कभी खोजने पर नहीं मिलता, वह तो राम में ही अवस्थित है और स्वयं राम हमारे भीतर हैं—हमारे सद्गुणों में, हमारे सत्कर्मों में, हमारी लगन, हमारी परिश्रमशीलता में। हमारी मर्यादा, हमारे सत्य, हमारे प्रेम, हमारी दया, हमारे शौर्य व हमारी कर्त्तव्यपरायणता में। जो इन सद्गुणों में रमता है, वह प्रकारांतर से राम में रमता है। जो इस तरह राम में रमता है, राम उसे अपना नायकत्व वरदान में दे डालते हैं।

राम का अर्थ व मर्म

महात्मा गांधी के रूप में इस युग का सर्वोपरि उदाहरण हमारे सामने है। राम के इसी चिंतन ने उन्हें नायक बना दिया। बारी हमारी अपनी है। हमें अपने कर्त्तव्य में लीन होकर राम की खोज करनी है। राम का अर्थ व मर्म भी यही है—जीवन की सारी लौकिकता के मध्य रहकर भी उससे निस्पृह हो जाना, अपनी चेतना को अपने लक्ष्य पर केंद्रित कर देना। यदि हम ऐसा कर सके तो वाल्मीकि रामायण में श्रीराम का वचन है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अर्थात—मेरा यह संकल्प है कि जो एक बार मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' कहकर मुझसे अभय माँगता है, उसे मैं सभी प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। जो राम को अपने अंत:करण में इसी तरह से खोज सके, उन्हें किसी रावण से कोई भय नहीं होगा। वे सभी खलनायकों को रोकने में सक्षम नायक बनकर रहने में समर्थ होंगे।

संभव है सूक्ष्मशरीर का जागरण

हम सभी का स्थूलशरीर दृश्य है, लेकिन सूक्ष्मशरीर अदृश्य। फिर भी स्थूलशरीर को सक्रिय बनाने में सूक्ष्मशरीर का बहुत बड़ा हाथ है। अदृश्य होते हुए भी सूक्ष्मशरीर की ताकत स्थूलशरीर से अधिक है। हालाँकि यह बात सच है कि बिना साधना-तपस्या के सूक्ष्मशरीर विकसित नहीं होता, किंतु यह साधना के द्वारा या अन्य किसी कारण से विकसित हो जाता है तो इसे कार्य करने के लिए किसी स्थूल माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। बिना किसी की मदद के ही सूक्ष्मशरीर इतना सामर्थ्यवान होता है कि कुछ भी करने की सामर्थ्य रखता है।

प्रश्न यह है कि सूक्ष्मशरीर क्या है ? यह किन तत्त्वों से मिलकर बना है ? इसकी क्या पहचान है ? हमारा सूक्ष्मशरीर—पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच तन्मात्राओं तथा मन, बुद्धि व अहंकार के समुच्चय का नाम है। इसमें अंत:करण अर्थात मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त, तथा ज्ञानेंद्रिय—ज्ञानशक्तियाँ हैं। तन्मात्राएँ अर्थात रूप, रस, गंध, स्पर्श और श्रवण—क्रियाशक्तियाँ हैं। इस प्रकार ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति के समूह का नाम ही सूक्ष्मशरीर है। ये दोनों शक्तियाँ निराधार नहीं रह सकतीं। इसलिए किसी-न-किसी प्रकार के स्थूलशरीर को स्वीकारने पर ही ये अपने लक्ष्य में समर्थ हो सकती हैं। अत: अपने लक्ष्य के लिए सूक्ष्मशरीर सर्वदा किसी-न-किसी स्थूल आधार को अपना लेता है। इसी सूक्ष्मशरीर द्वारा चित्त में जन्म, आयु तथा भोग देने वाली वासनाओं के संस्कार इकट्ठे रहते हैं।

प्रोफेसर जॉर्ज एशबी के शोध-अनुसंधान के प्रयोगों के अनुसार—कोई भी मनुष्य अपनी अंतश्चेतना को पुष्ट-परिपक्व व सक्षम बनाकर स्वयं को एक साथ अनेक स्थानों पर अभिव्यक्त कर सकता है। अनेक स्थानों पर एक साथ उपस्थित होने पर भी उसकी चेतना की संपूर्णता में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। मैडम अलेक्जेंडरा नील ने तिब्बत के कई दुर्गम स्थानों की साहसिक यात्रा की है। उनकी एक पुस्तक 'माई जर्नी टू तिब्बत' में तवांग मठ में साधना करने वाले 'सियात्सान राम्पा' नाम के एक लामा का उल्लेख है। सियात्सान अपने मठ में समाधिस्थ रहकर भी कई स्थानों पर एक साथ प्रकट हो जाते थे। मैडम नील जिन्होंने विभिन्न स्थलों पर उनके स्पर्श एवं आशीष की अनुभूति पाई, उनका कहना है कि ऐसा वह अपने सूक्ष्मशरीर को विभाजित करके करते थे। उनका यह विभाजित सूक्ष्मशरीर अपने संकल्पबल से कहीं भी स्थूलशरीर का निर्माण करके प्रकट हो जाता था, लेकिन सभी जगह उनकी चेतना सर्वथा अविभाज्य रहती थी।

समस्त गायत्री परिजन परमपूज्य गुरुदेव द्वारा की गई सूक्ष्मीकरण साधना के प्रयोग एवं उसके प्रभावों से परिचित होंगे। अपने महाप्रयाण से पूर्व गुरुदेव द्वारा की गई इस साधना के माध्यम से उन्होंने पाँच वीरभद्र प्रकट किए थे, जिनका उद्देश्य महाकाल द्वारा निर्धारित युग निर्माण योजना के पाँच विभिन्न कार्यसूत्रों का क्रियान्वयन करना था। अनेक परिजनों की अनुभूति थी कि ये शरीर एक ही समय में पाँच विभिन्न स्थलों पर उपस्थित होकर विभिन्न कार्यों का समुचित संपादन कर सकने में सक्षम थे।

सन् १९२१ में लंदन में 'प्रोजेक्शन ऑफ दि ऐस्ट्रल बॉडी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसके दो लेखक थे—इंग्लैंड के रियरवार्ड कैरिंग्टन तथा अमेरिका के सिल्वान मुलडून। इन दोनों ने दावा किया कि वे लोग अपने सूक्ष्मशरीर के जरिए बराबर यात्राएँ करते रहे। १२ साल की उम्र से ही वे सूक्ष्मशरीर के साथ घूमते रहे हैं। उनके अनुभव के अनुसार, सूक्ष्मशरीर सबसे पहले क्षैतिक स्थिति में रहता है। उसके बाद दो मीटर ऊँचा उठ जाता है तथा फिर अपनी इच्छा से घूमने के लिए आजाद हो जाता है।

कैरिंग्टन और मुलडून के अनुसार, हर आदमी ऐसा कर सकता है, बशर्ते यह यात्रा करने की वह इच्छा करे। इसी तरह मुंबई के एक व्यक्ति के० डी० सेठना भी अपने सूक्ष्मशरीर को स्थूलशरीर से बाहर निकालकर कई-कई घंटे बाहर घूमते रहते थे। चूँकि वे साधना की ऐसी अवस्था में थे, जिसमें उन्हें मार्गदर्शन की आवश्यकता

थी, अत: वे अपनी साधना आगे बढ़ाने हेतु श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी चले गए। यहाँ पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इस तरह का भ्रमण करने के बजाय अपनी साधना को अधिक उन्नत करना जरूरी है। अपने स्थूलशरीर से बाहर निकलना तो एक तरह की विद्या है, सिद्धि है और इसका इस्तेमाल मनोरंजन के लिए करना उचित नहीं है।

कैरिंग्टन के अनुसार—सूक्ष्मशरीर नींद में भौतिक शरीर के ऊपर मँडराता रहता है। बेहोशी की अवस्था में वह भौतिक शरीर से निकल जाता है। इसे 'अनैच्छिक प्रक्षेपण' कहते हैं। अगर अपनी इच्छा से सूक्ष्मशरीर को भौतिक शरीर से अलग किया जाए, तो उसे 'ऐच्छिक प्रक्षेपण' कहा जाता है। वास्तव में सूक्ष्म तथा भौतिक शरीर एक तार से जुड़े रहते हैं, जिसमें प्राणवायु की धारा बहती है।

भारतीय दर्शन अपने आदिकाल से ही भौतिक और सूक्ष्मशरीर का अस्तित्व स्वीकार करता रहा है। वेदांत के महान ज्ञाता जगद्गुरु शंकराचार्य ने महान मीमांसक मंडन मिश्र की पत्नी भारती के प्रश्नों का समाधान पाने के लिए परकाय-प्रवेश करके यथार्थ अनुभव प्राप्त किया था। आज भी इस परंपरा के महान तत्त्ववेत्ताओं और योगसाधकों की कमी नहीं है, जो अपने सूक्ष्मशरीर द्वारा लोक-कल्याण के लिए प्रयासरत हैं। जो न सिर्फ सूक्ष्मशरीर के विषय में पूर्ण ज्ञान रखते हैं, अपितु इच्छानुसार सूक्ष्मशरीर को स्थूलशरीर से पृथक कर लोक-लोकांतरों में स्वच्छंद विचरण करने में पूरी तरह सक्षम हैं।

सूक्ष्मशरीर को स्थूलशरीर से पृथक करना, परकाय-प्रवेश करना एक तरह की विद्या व सिद्धि है, जिसे अर्जित करना इतना जरूरी नहीं है, जितना कि यह कि हम अपने सूक्ष्मशरीर को विकसित करें। यदि हमारा सूक्ष्मशरीर विकसित होगा तो इसके माध्यम से जीवात्मा की ऊर्ध्वगति संभव है। सूक्ष्मशरीर के विकसित होने से मनुष्य जीवन में कई ऐसे कार्य किए जा सकते हैं, जो मानव जीवन के लिए हितकर हैं। हमें भी अपने सूक्ष्मशरीर को अनुभव करने व उसे विकसित करने हेतु सरल साधनाओं का अभ्यास करना चाहिए, जैसे—ध्यान, योगनिद्रा, जप-तप, प्राणायाम आदि। परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्म व कारणशरीर के विकास हेतु सविता ध्यान-साधना का उल्लेख किया है। इसके साथ ही उपासना, साधना व आराधना को अपनी जीवन-साधना का अभिन्न अंग बनाने के लिए कहा है। निश्चित रूप से इन साधनाओं के अभ्यास से सूक्ष्म-कारणशरीर का विकास व चेतना का ऊर्ध्वगमन संभव है। ❀

सिकंदर ने भारत पर आक्रमण कर दिया। पुरु का सामना करने से पूर्व कई छोटे-बड़े राज्यों से उसे युद्ध करना पड़ गया। एक छोटा-सा राज्य मार्ग में पड़ा, उसके राजा के पास बहुत थोड़ी-सी सेना थी। तब भी वह सिकंदर से युद्ध करने रणक्षेत्र में कूद पड़ा। वही हुआ, जिसका भय था, राजा युद्ध हार गया। विजय के पश्चात राजा को सपरिवार कुलगुरु के साथ सिकंदर के समक्ष लाया गया।

सिकंदर ने क्रोध में कुलगुरु से कहा—"मुझे बताया गया है कि तुमने राजा को सीख दी कि वह युद्ध करे। जब पराजय निश्चित थी, तो ऐसी मूर्खतापूर्ण शिक्षा किस काम की!" कुलगुरु ने उत्तर दिया—"सिकंदर! निश्चित तो मृत्यु भी है, तो क्या मनुष्य जीना भी छोड़ दे। अरे! मैंने राजा को यही सिखाया कि जियो भी सम्मानपूर्वक और मरो भी सम्मानपूर्वक। मुझे गर्व है कि राजा हारा जरूर, पर अपने सम्मान की रक्षा करते हुए। मनुष्य के साथ जय-पराजय नहीं, गौरव व सम्मान जाता है।" सिकंदर को तब ही अनुभव हो गया कि भारतवासी किसी और मिट्टी के बने हैं।

कठिन है भक्ति की राह

तीन-चार वर्ष की नन्ही मीरा ने जब आँखें खोलीं तो वह कुछ समझ पाती इससे पहले उसकी माँ अपना शरीर त्याग चुकी थीं। उसके सिर पर अब पिता रतन सिंह और उसके प्यारे राव दादू का हाथ था। पिता तो सारा दिन कामकाज में व्यस्त रहते, मीरा अपने दादू के साथ ही अधिकतम समय व्यतीत करती। वह कभी गुमसुम रहती, तो कभी दादू से खूब सारी बातचीत करती। एक बात जिससे उसका बालमन अत्यंत प्रभावित था, वह था उसका कृष्णप्रेम। यह उसको माँ से विरासत में मिला था। वह जब भी मन करता, अपने भगवान मुरलीधर के सामने खड़ी हो जाती और उनसे सारी बातें करती।

दादू यह सब देखते थे और वे महसूस करते थे कि यह कृष्णोपासना उसकी माँ के गुण हैं, जिसके प्रभाव से मीरा का बालमन भी कृष्णभक्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। मीरा को यदि माँ की याद भी आती तो वह इसके लिए भी अपने कृष्ण से ही पूछती कि मेरी माँ मुझे छोड़कर कहाँ गई है। कभी रोती और कृष्णविग्रह से कुछ बोलने का आग्रह करती। कृष्णप्रेम तो ठीक था, पर माँ की याद में नन्ही कोमल आँखों में झलकने वाले आँसू देख दादू का हृदय फट जाता था। दादू ने सोचा कि क्यों न इसे कुड़की से अपने साथ मेड़ता ले जाऊँ, ताकि मीरा का दुःखी मन बदल सके।

एक दिन दादू ने अपने पुत्र रतन सिंह को कहा—"पुत्र! तुम पर मैं एक पिता और माता, दोनों का बोझ नहीं डाल सकता। तुम प्रसन्नतापूर्वक वीरोचित कार्यों में जुट जाओ। मैं मीरा को अपने साथ लिए चलता हूँ।" रतन सिंह ने सहर्ष बात मान ली। दादू मीरा को लेकर मेड़ता आ गए। मीरा अपने मुरलीमनोहर और उनके सामान को भी लाना नहीं भूली। मीरा को भक्ति देनी थी, कृष्णप्रेम से अलंकृत करना था, पर बदले में मिल गया, माता की मृत्यु का दारुण-असह्य दरद। यह दारुण दंश मीरा के भावी जीवन में विष-बेल के समान न फैल जाए, इसलिए राव दादू उसे साए की तरह साथ लगाए रहते थे। उसके मन को बाँटने का हर संभव प्रयास करते थे। उसे जलाशय ले जाते थे। स्फटिक से स्वच्छ जल में झिलमिलाती तारकावल्लियों को दिखाते। ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि होती तो आकाश के चाँद के जल में पड़ते प्रतिबिंब को दिखाते।

मीरा दादू के निश्छल अगाध प्रेम में पल-बढ़कर बड़ी हो गई। अब मीरा ग्यारह वर्ष की हो गई थी। मीरा के अंतर्मन से कृष्ण के प्रति कविताएँ एवं गीत स्वतः फूट पड़ते थे। इससे दादू बड़े प्रसन्नचित्त थे। ग्यारह वर्ष की मीरा अपने से बड़े लगभग अस्सी वर्ष के दादू से भी सयानी हो गई थी। एक दिन मीरा ने कहा—"दादू! व्यक्ति प्रसन्नता में किसी को भी मनचाहा वरदान देता है।" दादू ने कहा—"हाँ! देता है।" मीरा ने कहा—"वचन दो दादू कि मैं कृष्णभक्ति से कभी विमुख न होऊँ।" दादू ने कहा—"तुम्हें तो हम कृष्णार्पिता कर चुके हैं।" मीरा ने कहा—"दादू! तब यह भी समझ लो कि विवाह और भक्ति, दोनों को साथ-साथ साधना कठिन होगा मेरे लिए।" राव दादू निर्णय लेते हुए बोले—"मैं जब तक जीवित हूँ, तुम्हारा विवाह नहीं होगा और मैं इस वचन की रक्षा करूँगा।" अब कृष्णभक्ति ही उसका ध्येय था। मीरा चतुर्भुज मंदिर की ओर हाथ जोड़ते हुए उठ खड़ी हुई।

राव दादू सोच रहे थे कि भक्ति का मार्ग सरल भी है और कठिन भी है। कठिन इसलिए कि इस मार्ग में घर-संसार, अपने स्वजन-परिजन, आत्मीय बंधुजन सब एक-एक करके खोते चले जाते हैं और अंत में हृदय में केवल भगवान बच जाते हैं। इस खोने की कीमत तो चुकानी ही पड़ती है। मीरा की नियति में क्या है, यह सोचकर ही उनका हृदय काँप उठता था। इस संसार में भक्ति नहीं है और भक्ति में संसार वास नहीं करता। मीरा को संसार में रहकर कृष्णभक्ति साधनी है। फिर मीरा का संसार कैसा और कितना भयानक होगा, यह सोचते-सोचते दादू बुरी तरह अस्वस्थ रहने लगे।

एक दिन उनकी तबीयत कुछ ज्यादा ही अस्वस्थ थी। प्रातः उठते ही दादू की अस्वस्थता की सूचना मीरा को मिली। वह कक्ष की भीड़ को चीरते हुए दादू की

शय्या तक पहुँची। दादू की आँखें उसी को ढूँढ़ रहीं थीं। मीरा को देखते ही उनमें एक हलकी चमक आई और उनके मुख से अस्पष्ट शब्दों में निकला—"मीरा!" मीरा दादू के वक्ष पर मूलविहीन वृक्ष की तरह गिर पड़ी—"दादू! तुम्हें क्या हो गया? मैं कैसे तुम्हारे बिना रह सकती हूँ? माँ भी मुझे छोड़कर चली गई है, तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी?" राव दादू के ओंठ हिले। उन्होंने हलके शब्दों में कहा—"जिसका कोई नहीं होता, उसका भगवान होता है। मुरलीमनोहर तुम्हारा ध्यान रखेंगे। वही तुम्हारे सगे-संबंधी होंगे। तुम उनको नहीं भूलना। वे तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे।"

शब्दों में अपनी कोई सामर्थ्य नहीं होती, वरन सामर्थ्य उसके पीछे के व्यक्तित्व की होती है। साधारण व्यक्ति के मुँह से निकले असाधारण शब्द भी वह प्रभाव नहीं दिखा पाते जो असाधारण व्यक्ति के मुँह से निकले साधारण शब्द दिखा पाते हैं। दादू के साथ मीरा का संबंध भावनात्मक ही नहीं, आध्यात्मिक भी था। दादू को जैसे अनुभूति थी कि मीरा भक्ति के क्षेत्र में किस क्रांति को जन्म देने के लिए अवतरित हुई है। इसीलिए दादू ने मीरा को जो कहा, वह था तो साधारण परंतु उसका प्रभाव व्यापक हुआ।

मीरा ने दादू के कहे गए शब्दों को हृदय से लगा लिया। उसने निश्चय कर लिया कि भगवान कृष्ण के अतिरिक्त न तो वह किसी को अपना मानेगी और न किसी और को समर्पित होगी। शनैः-शनैः मीरा और कृष्ण, जैसे एक ही व्यक्तित्व हो गए। ऐसा लगा कि मीरा अविवाहित ही रहेगी, परंतु नियति को कुछ और ही स्वीकार था कि एक दिन वह समय भी आया, जब मीरा को विवाह के बंधन से बँधना पड़ा ।

मीरा का विवाह जिस परिवार में हुआ, उस परिवार वालों ने ही उसको मारने की तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। कक्ष में जहरीला साँप छोड़ने से लेकर विष का प्याला देने तक ऐसा कोई मार्ग उन्होंने नहीं छोड़ा, जिससे कि मीरा को भक्ति के मार्ग से विचलित किया जा सके। परंतु भक्त की रक्षा की जिम्मेदारी स्वयं भगवान की होती है। जितनी बार कष्ट उपस्थित हुए, उतनी ही बार उनसे रक्षा के साधन भी।

ऐसे ही कठिन समय में मीरा को अपने दादू की बहुत याद आई। उसी भाव को सम्मुख रख मीरा ने अपने मन की व्यथा संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी को लिख भेजी। गोस्वामी तुलसीदास स्वयं भक्ति की परिभाषा थे। उनका जीवन भगवान श्रीराम की भक्ति और उनके प्रति अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति में गुजरा था। वे न केवल भक्ति की राहों से परिचित थे, अपितु उस पथ पर मिलने वाले कष्टों से भी।

गोस्वामी तुलसीदास ने मीरा को उत्तर भेजा—**जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जदपि परम सनेही॥** मीरा के लिए इतना उत्तर पर्याप्त था। आज तुलसीदास जी के शब्दों ने उस पर वही प्रभाव डाला था, जो किसी समय मरणासन्न दादू के शब्दों ने डाला था। मीरा का शेष जीवन भक्ति का पर्याय बन गया। जिस तरह प्रभु अनंत हैं, वैसे ही उनके भक्ति के मार्ग अनंत हैं और उन अनंत मार्गों पर चलने वाले पथिक अनंत हैं, पर उन अनंत पथों के अनंत पथिकों के बीच यदि कहीं एक चमकता रत्न दिखाई पड़ता है तो वह मीरा की भक्ति का ही है। भावपूर्ण शब्दों से प्रारंभ हुई वह यात्रा भक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर ही संपन्न हुई।

किसी भक्त का यह आशा करना कि भगवान उसके इशारों पर नाचने के लिए सहमत हो जाएगा, आत्मप्रवंचना भर है। भक्त को ही भगवान के संकेतों पर कठपुतली की तरह नाचना पड़ता है। भक्त की इच्छाएँ भगवान पूरी नहीं करते, वरन भगवान की इच्छा पूरी करने के लिए भक्त को आत्मसमर्पण करना पड़ता है। बूँद को समुद्र में घुलना पड़ता है, समुद्र बूँद नहीं बनता। यही है उपासना का एकमात्र तत्त्वदर्शन।

—परमपूज्य गुरुदेव

स्वस्थ बनें युवा, सशक्त बने राष्ट्र

युवावर्ग हमारे देश की मुख्य ऊर्जा व शक्ति है। जिससे हमारा देश नित नई ऊँचाइयों को छू रहा है। यह वर्ग ऐसा है, जिसके पास काम करने का जुनून, हौसला, जिम्मेदारियाँ सबसे अधिक होती हैं। इसलिए सभी को युवाओं से आशा होती है, लेकिन हमारे देश के युवा लोग गलत खान-पान व अस्वस्थ जीवनशैली के कारण विभिन्न तरह के रोगों का शिकार बन रहे हैं, जिसका असर देश की प्रगति पर पड़ रहा है। युवा तो वह है, जिसके सामने कोई भी परिस्थिति हार मान ले, वह हारता नहीं, निरंतर आगे बढ़ता है, कार्य करता है। लेकिन आज का युवावर्ग अपने स्वास्थ्य पर ध्यान न दे पाने के कारण युवा होते हुए भी शारीरिक रूप से कमजोर व मानसिक रूप से दुर्बल हो रहा है—ऐसा आँकड़े बताते हैं।

कार्यक्षेत्र में सबसे अधिक माँग युवाओं की इसलिए होती है; क्योंकि वे अधिक कार्य करने में सामर्थ्यवान व सक्षम होते हैं, लेकिन यदि इन युवाओं को बीमारी का घुन लग जाए तो दोषी कौन है? कामकाजी युवाओं की सेहत पर नजर रखने वाले देश के एकमात्र संस्थान 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑक्युपेशनल हेल्थ' की रिपोर्ट के अनुसार—बीते पाँच साल में युवाओं की कार्यक्षमता पर प्रतिकूल असर पड़ा है। संस्थान के पाँच प्रमुख शहरों पर किए गए अध्ययन में मेट्रो शहरों में काम करने वाले युवा तनाव, अनिद्रा, डायबिटीज और मोटापे का शिकार पाए गए हैं, जिसकी वजह रोगप्रतिरोधक क्षमता का कम होना, अनियमित दिनचर्या और बेतरतीब खान-पान को बताया गया है।

देश में ३१.२ प्रतिशत कामकाजी युवा किसी न किसी तरह के दरद से परेशान हैं, जिसमें माइग्रेन प्रमुख है। ६५ प्रतिशत युवावर्ग दरद के कारण छह से आठ घंटे की सामान्य नींद भी नहीं ले पाता। ४९ प्रतिशत युवाओं पर लगातार दरद की वजह से मानसिक स्वास्थ्य पर असर हो रहा है और १३ प्रतिशत युवाओं को क्रॉनिक दरद की वजह से नौकरी तक छोड़नी पड़ी है। इसी तरह सर्वेक्षण में डायबिटीज के आँकड़े भी एकत्र किए गए। ८७ प्रतिशत परिवारों में डायबिटीज होने पर भी नियमित जाँच नहीं कराई गई। ५७ प्रतिशत युवाओं को डायबिटीज के सेहत पर पड़ने वाले असर की जानकारी नहीं। ९२ प्रतिशत युवाओं ने सही डाइट के लिए कभी डायटीशियन की मदद नहीं ली। ५२ प्रतिशत युवा किसी भी तरह का शारीरिक व्यायाम नहीं करते और ६.४ प्रतिशत युवाओं को यह नहीं पता कि डायबिटीज किस वजह से होती है।

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् ने मानसिक स्वास्थ्य शोध के अंतर्गत हृदय की बीमारियों पर अध्ययन किया, जिसमें युवाओं में हाइपरटेंशन अथवा हाई ब्लडप्रेशर प्रमुख रूप से सामने आए। वर्ष २००१ से २०११ के बीच किए गए अध्ययन में पाया गया कि ३० से ४५ साल का ३६ प्रतिशत कामकाजी युवावर्ग हाई ब्लडप्रेशर से ग्रस्त है।

दिल्ली में अभी हाल ही में हुए एक अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में युवाओं की गलत खान-पान की आदतों पर चर्चा की गई। इस सेमिनार में विशेषज्ञों का कहना है कि लोगों के बीमार रहने का बीज उनके बचपन में ही पड़ जाता है। दिल्ली के ३३ फीसदी बच्चे सामान्य से अधिक मोटे हैं, जिसका मतलब यह है कि वे अगले पाँच से आठ साल में कई रोगों की चपेट में आ सकते हैं। सामान्यत: चिकित्सक युवाओं की बीमारी को दो श्रेणियों में बाँटते हैं—पहला, रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने की वजह से होने वाला संक्रमण और दूसरा, मेटाबॉलिक डिसऑर्डर, जिसमें मोटापा प्रमुख है।

युवा हैं तो भूख लगना भी स्वाभाविक है। ऐसे में भूख मिटाने के लिए कुछ भी खा लेना उनके स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है, लेकिन ऐसा ही हो रहा है। कामकाजी युवा भूख लगने पर स्ट्रीट फूड खाने के शौकीन होते जा रहे हैं, जो उनके स्वास्थ्य पर लगातार प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। इस बारे में एफएसएसआई द्वारा दिल्ली के तीन हजार से अधिक ठेले और खोमचे वालों की क्वालिटी का अध्ययन किया गया, जिसमें यह पाया गया कि ७८

प्रतिशत स्ट्रीट फूड विक्रेता मानकों के आधार पर खाना नहीं बेच रहे हैं। फूड सेफ्टी क्वालिटी के तहत वेन्डर बिना ग्लव्स (दस्ताने) पहने खाने की कोई चीज नहीं बेच सकते; जबकि केवल दो प्रतिशत वेन्डर इस नियम का पालन करते पाए गए।

गैस्ट्रोइंट्रोलॉजिस्ट विशेषज्ञों का कहना है कि कामकाजी युवाओं में केवल दो प्रतिशत युवावर्ग हेल्दी डाइट को लेकर जागरूक है। भूख लगने पर कुछ भी खा लेने की आदत उसे कोलाइटिस और अपच का शिकार बना रही है। इसका उदाहरण एक २५वर्षीय युवा है, जिसने लगातार छह माह तक बाहर का खाना खाया और फिर उसके आमाशय में गंभीर संक्रमण हो गया, जो कोलाइटिस में बदल गया। परेशानी की बात तो यह है कि ७० प्रतिशत युवावर्ग केवल पेट भरने के लिए खाता है, वह भोजन के माध्यम से स्वस्थ रहने के प्रति जागरूक नहीं है।

अभी हाल ही में ३० अप्रैल के दिन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दिल्ली में ऐंटीबॉयोटिक रेजिस्टेन्स पर ११४ देशों की रिपोर्ट जारी की। इस अध्ययन में भारत सहित कई प्रमुख देशों में डायरिया, मलेरिया, निमोनिया और हेपेटाइटिस-बी आदि के कारक—वायरस के खिलाफ दवाओं का असर खतम पाया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि बीमारियों के इलाज के लिए प्रयुक्त की जाने वाली दवाओं का असर अब कम होता जा रहा है। इस बारे में ऐंटीबॉयोटिक स्टीवर्डशिप नेटवॅर्क इन इंडिया के विशेषज्ञों का कहना है कि युवाओं के रहन-सहन व खान-पान की अस्वास्थ्यकर आदतों के साथ ऐंटीबॉयोटिक दवाओं का गलत इस्तेमाल दवाओं के असर को कम कर रहा है। एशियाई देशों की जारी रिपोर्ट में डायरिया के कारक—ई-कोलाई पर दवाओं के असर को खतम बताया गया है, यानी ऐसे संक्रमण के लिए अब नई दवाओं को जारी करना होगा, जो रोगों पर बेहतर असर दिखा सकें।

अब यह तो स्पष्ट है कि युवाओं की कमजोर सेहत का कारण अस्वस्थ जीवनशैली व खान-पान की गलत आदतें हैं। लेकिन इसके अलावा कार्य का तनाव, समय पर कार्य पूरा करने का दबाव, समय पर कार्यस्थल पहुँचने के लिए संघर्ष से जूझना, अत्यधिक व्यस्तता, शारीरिक व्यायाम न करना आदि शामिल हैं, जिनके कारण युवाओं को कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसे युवा तब तक चिकित्सक के पास अपनी जाँच नहीं कराते, जब तक इन्हें कोई गंभीर समस्या न हो जाए और यही कारण है कि इनकी जाँच कराने पर गंभीर बीमारियाँ सामने आती हैं।

आज जरूरत है कि युवा अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनें और अपने पोषणयुक्त खान-पान का ध्यान रखते हुए जीवनशैली से संबंधित आदतों को सुधारें, अन्यथा बीमारियों की मार से उन्हें ही पीड़ित एवं परेशान रहना पड़ेगा, जो उनके साथ-साथ उनके परिवार के परिजनों के लिए भी परेशानी का कारण बन सकता है। अस्वस्थ युवा न तो अपने लिए और न ही अपने देश-समाज व परिवार के लिए कुछ कर सकते हैं, यदि उन्हें कुछ करना भी है तो उन्हें स्वस्थ व सशक्त बनना होगा और इसके लिए उन्हें स्वस्थ जीवनशैली अपनाते हुए रोगप्रतिरोधक क्षमता का विकास करना हीगा। ❀

चंद्रपुरी नगर में देवनिपुण नामक एक व्यक्ति रहा करता था। सारे नगर में उसकी ईमानदारी की कथाएँ प्रचलित थीं। नगर का एक वणिक चंद्रचूड़ जब व्यापारयात्रा पर जाने लगा तो उसने एक थैली स्वर्णमुद्राएँ देवनिपुण के पास धरोहर के रूप में रखीं, परंतु लौटने पर उसे थैली में सौ स्वर्णमुद्राएँ कम मिलीं। उसने देवनिपुण का बहुत अपमान किया, परंतु वे निर्विकार भाव से सारा अपमान सहन कर गए। घर लौटने पर चंद्रचूड़ को पता चला कि वे स्वर्णमुद्राएँ उसकी पत्नी ने आवश्यक कार्य हेतु ली थीं। सत्य का बोध होने पर क्षमा-प्रार्थना हेतु चंद्रचूड़ पुनः देवनिपुण के पास पहुँचा, तो भी उनने प्रसन्नता से उसका स्वागत किया। चंद्रचूड़ ने अनुभव किया कि मान-अपमान में समान रहने वाले ही सच्चे संत होते हैं।

पर्व विशेष

इस बार मने आत्मज्योति की दीपावली

दीपावली दीयों का जगमगाता उत्सव है। अनगिनत दीयों के प्रकाश में दीपावली का पर्व मनाया जाता है, इसलिए दीपावली को 'प्रकाशपर्व' की संज्ञा दी जाती है। प्रकाशपर्व अर्थात निविड़ अंधकार की कठोर छाती को चीरकर उजाले की उमंग बिखेरना, अविश्वास एवं भ्रम रूपी अंधकार को विनष्ट कर प्रेम, विश्वास एवं त्याग रूपी दीये की ज्योति का प्रकटीकरण ही दीपावली है। दीपावली जड़ और चेतन के मिलन का प्रतीक और दीये के ज्योतिर्मय त्याग का पर्व है।

दीपावली का दीया जलता है और अपने प्रकाश से कार्तिक अमावस्या की सघन निशा को तार-तारकर रंग-बिरंगी किरणों का पंख फैला देता है। चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश छा जाता है। इसलिए अँधेरे के लिए न तो चिंतित होना चाहिए और न ही उसका चिंतन करना चाहिए। अनिवार्य है—दीये के प्रकाश को प्रदीप्त करने का उपाय करना। जो लोग अमावस्या की काली रात का ही विचार करते हैं, वे अँधेरे में ही खोए रहते हैं, उनका दीपावली के प्रकाशपूर्ण उमंग एवं उत्साह तक पहुँचना संभव नहीं। ऐसे लोग अपने अविश्वास एवं संदेह रूपी अंधकार से चिपके रहने में भला समझते हैं और मन में कुढ़न को पनाह देकर कराहते रहते हैं।

आज जीवन, समाज एवं राष्ट्र के बहुत सारे अंग अँधेरे में घिरे हुए हैं और वहाँ अँधेरे की भाँति अशुभ और अनीति भी छाई हुई है। कुछ लोग अँधेरे के इस अशुभ के इतने आदी हो चुके हैं कि तमस् को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसी दशा में उनकी प्रकाश को पाने एवं उस तक पहुँचने की आकांक्षा क्षीण हो जाती है। अंधकार की यह स्वीकृति ही मनुष्य का सबसे बड़ा पाप एवं अभिशाप है। यही उसका स्वयं के प्रति किया गया भीषण अपराध है। इसी से उसके दूसरे अन्य अपराधों का जन्म होता है। सभी तरह के पाप इसी मूल पाप से जन्मते एवं पनपते हैं। याद रहे कि जो व्यक्ति अपने प्रति इस पाप को नहीं करता है, वह कोई अन्य अपराध एवं पाप नहीं कर सकता है।

आज की दुनिया इसी महाअंधकार की सघन घटाओं से घिरी हुई नजर आती है। इस अंधकार में ज्योति एवं प्रकाश खो गए हैं, विलीन हो गए हैं। नीति, धर्म, मर्यादा, सेवा, सहकार, त्याग आदि सद्गुण एवं सदाचरण क्षीण हो गए हैं और इसी कारण आतंकवाद, अलगाववाद, जातिवाद अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं और नर्तन कर रहे हैं। हिंसा, अपराध, हत्या, भ्रष्टाचार एवं बलात्कार की घटनाएँ चौंकाती नहीं हैं, आएदिन आम घटनाओं का स्थान ले चुकी हैं। अंधकार का यह सघन कुहासा भयभीत एवं आतंकित करने लगा है।

कतिपय लोग अंधकार की इस स्वीकृति से बचने के लिए उसके अस्वीकार में लग जाते हैं। उनका जीवन अंधकार के निषेध का ही सतत उपक्रम बन जाता है, पर यह भी एक भूल है। अंधकार को मान लेने वाला भी भूल में है, उससे लड़ने वाला भी भूल में है। न अंधकार को मानना है, न उससे लड़ना है। ये दोनों ही अज्ञान हैं। जो ज्ञानी हैं, वे प्रकाश को प्रदीप्त करने का आयोजन करते हैं। सच तो यह है कि अँधेरे की अपनी सत्ता ही नहीं है। वह तो मात्र प्रकाश का अभाव एवं रिक्तता है। प्रकाश का आगमन होते ही वह अपने ही आप हट-मिट जाता है। ऐसी ही बात अशुभ, अनीति एवं अधर्म के संबंध में भी है। इनको हटाने-मिटाने के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है, इसके लिए दीपावली के दीये को जलाना ही पर्याप्त है। दीये की चेतना एवं धर्मरूपी प्रकाश में, अधर्म, अंधकार एवं अविश्वास की मृत्यु सुनिश्चित है।

दीया जलता है और अपने प्रकाश से सर्वत्र आशा, विश्वास एवं उत्साह का वातावरण बना देता है। दीये की संरचना और संसाधन तो सांसारिक भूमि का भाग हैं, परंतु उसकी लौ अनगिनत जनों को प्रेरणा, प्रकाश व ऊर्जा देने के लिए लगातार ऊर्ध्वगामी बनी रहती है। दीये की देह अपनी मातृभूमि की मिट्टी से विनिर्मित है, परंतु इसकी ज्योति में चैतन्यता का प्रकाश सन्निहित है। हमारा प्राणबल, मनोबल एवं आत्मबल ही वह तेल है, जिसके

बल पर यह दीया जला है। हमारा प्रचंड एवं प्रखर संकल्प ही इस दीये की बाती है और इसकी ज्योति हमारी आत्मचेतना है, जो अपने साहस, पराक्रम, सद्ज्ञान व सत्कर्म की प्रकाश-किरणें बिखेरकर देश व विश्व के युवाओं एवं ज्ञानीजनों का सत्पथ एवं सन्मार्ग प्रकाशित कर रही है।

दीपावली में जलने वाले अनगिनत दीप छोटे-छोटे लग सकते हैं, परंतु इन छोटे-छोटे दीयों में बहुत कुछ समाया हुआ है। इनमें मानवीय चेतना समायी हुई है। यह अग्निशिखा ही इनका प्राण है। इसके निरंतर ऊपर उठने की उत्सुकता ही इनकी आत्मा है। यह लौ है, इसलिए तो दीया—दीया है, अन्यथा तो सब मिट्टी है। जो लोग दीये को जलने एवं इसके पश्चात बुझते देख कूड़े की ढेरी में पाते हैं, वे इसके सत्य को समझ न सकेंगे। परंतु जिन्हें इसकी ज्योति दिखाई देती है, वे अवश्य इसके द्वारा होने वाले ज्योतिर्मय परिवर्तन को निहार सकेंगे, इसके संभावित परिवर्तन को समझ सकेंगे।

मिट्टी के दीये में मनुष्य की जिंदगी का बुनियादी सच समाया हुआ है। '**अप्प दीपो भव**' कहकर तथागत भगवान बुद्ध ने इसी को अभिव्यक्त एवं उजागर किया है। दीये की माटी अस्तित्व का प्रतीक है, तो ज्योति चेतना का। परम चेतना परमात्मा की करुणा ही स्नेह बनकर वाणी की बात को सिक्त किए रहती है। चेतना ही प्रकाश है, जो समूचे अस्तित्व को प्रभु की करुणा के सहारे सार्थक करता है। चेतना ही वह दिव्यता है, जो हमारी रग-रग में घुलकर पवित्र विचार एवं मधुर भाव में प्रकट होती है।

मिट्टी सब जगह सहज सुलभ है और सबकी है, परंतु ज्योति हरेक की अपनी और निजी है। केवल मिट्टी भर होने से कुछ नहीं होता। उसे कुंभकार परमात्मा के चाक पर घूमना पड़ता है। उसके अनुशासन की आँच में तपना पड़ता है। तब जाकर परमात्मा की स्नेहरूपी करुणा का पात्र बनकर दीये का रूप ले लेती है—ऐसा दीया, जिसमें आत्मज्योति प्रकाशित होती है। दीपावली पर दीये तो हजारों-लाखों जलाए जाते हैं, यों इस एक दीये के बिना अँधेरा हटता तो है, पर मिटता नहीं। अच्छा हो कि इस दीपावली में दीये के सच की इस अनुभूति के साथ यह एक दीया और जलाएँ, ताकि इस मिट्टी की देह दीप में आत्मा की ज्योति मुस्करा सके और यह प्रकाशपर्व सार्थक हो सके। ❀

राजा ऋषभदेव के सौ पुत्र थे और उन्होंने अपने जीवन में यह व्यवस्था की थी कि उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाए और शेष ९९ पुत्र संन्यासी हो जाएँ। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर ९८ पुत्रों ने संन्यास ले लिया, पर उनमें से बाहुबली नामक एक पुत्र ने कहा कि राजपद का आधार योग्यता होना चाहिए, मात्र अग्रज होना नहीं। उसने भरत को राजपद हेतु अपनी योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा। फलस्वरूप विभिन्न प्रतियोगिताओं का दौर चल पड़ा।

राजनीति, धर्म, अर्थ और शस्त्र ज्ञान की प्रतियोगिताएँ हुईं। भरत अग्रज होने पर भी पराजित हुआ तो राजसंसद ने बाहुबली को सिंहासन देने का निर्णय किया। भरत को यह सहन नहीं हुआ। राज्य के लोभ में उसने बाहुबली पर प्राणघातक प्रहार कर दिया। बाहुबली ने उसके प्रहार को निष्फल कर दिया और प्रतिक्रियास्वरूप भाई भरत के प्राण लेने को उद्यत हुआ कि तभी उसके अंतर्मन से पुकार निकली—भाई का वध करके जो सिंहासन मिले, उसका क्या मूल्य? अंतर्प्रेरणा से अभिभूत होकर बाहुबली तुरंत राजपद त्यागकर तपस्या हेतु निकल पड़ा और जनकल्याण के लिए जिए गए अपने जीवन से सदा के लिए अमर हो गया।

माँ है प्रकृति उसे दुर्गा न बनने दें

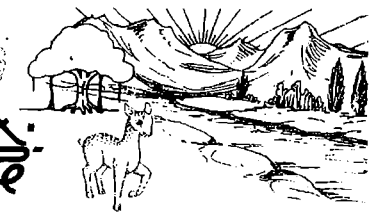

पर्यावरण हमारा जीवन है, हमारे जीवन से जुड़ा अभिन्न अंग है। जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैवीय परिस्थितियों का योग ही पर्यावरण है। यही जीवमंडल है। जीव को जल, स्थल, वायु एवं आकाश की आवश्यकता पड़ती है। अत: जीवमंडल में जलमंडल, स्थलमंडल एवं वायुमंडल भी समाहित हैं। ये तीनों एकदूसरे के परिपूरक हैं। इनमें से एक भी प्रभावित होता है तो अन्य को प्रभावित करता है। इन तीनों मंडलों से प्राप्त ऊर्जा का समुचित प्रयोग ही पर्यावरण-संरक्षण है एवं दुरुपयोग प्रदूषण कहलाता है। इसी प्रदूषण का प्रभाव है कि प्रकृति में अजीबोगरीब घटनाएँ घटती जा रही हैं।

पर्यावरण प्रदूषण के कारण पिछले कई वर्षों से मौसम में अप्रत्याशित एवं औचक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। इस वर्ष पारे ने पिछले ६२ वर्ष का रेकार्ड तोड़ा है। उत्तर भारत में गरमी की वजह से पारा ४८ डिगरी को पार कर चुका था, इससे जीवन कठिन हो गया था। लग रहा था कि आसमान से धधकती आग के अँगारे बरस रहे हैं। इस सदी का प्रारंभ भी मौसम की इस बेरुखी से हुआ था, जिससे पिछले सैकड़ों सालों का रेकार्ड टूटा। यह स्थिति अब इससे भी बदतर होती जा रही है। सरदी हो या गरमी या फिर बरसात का मौसम, अपनी सीमा पार करते नजर आ रहे हैं।

मौसम की असामान्यता मानव जीवन के लिए भीषण खतरा एवं चुनौती बन रही है। कहीं ज्येष्ठ के तपते महीने में अतिवृष्टि हो रही है, तो कहीं जमाव बिंदु वाली ठंढ में बाढ़ आ रही है। दिल्ली समेत उत्तर भारत के कई राज्यों में पारा तो ४८ डिगरी को स्पर्श कर चुका है और इसी मौसम में ओलावृष्टि भी हुई है। मौसम की यह अनिश्चितता मानवीय स्वास्थ्य के लिए अत्यंत घातक सिद्ध हो रही है। इस प्रतिकूल मौसम के कारण ऐसी बीमारियाँ पनप रही हैं जिन्हें न तो पहले जाना-समझा गया था और न ही उसकी कोई कल्पना ही की जा सकी थी, परंतु मौसम का यह दुश्चक्र चल रहा है और मानव के साथ सभी जीव-जंतुओं एवं वनस्पति जगत को प्रभावित कर रहा है।

इस सदी के शुरू होते ही विश्वभर में मौसम संबंधी अप्रत्याशित एवं आश्चर्यजनक घटनाओं की जैसे बाढ़ आ गई है। रेगिस्तान में कोई कल्पना कर सकता था कि बरफ गिरेगी, पर हकीकत यही है कि इस वर्ष दुबई में ओलावृष्टि भी हुई। अमेरिका समुद्री तूफान की रह-रहकर चपेट में आ रहा है। पिछले वर्ष उड़ीसा में १५० से २०० किलोमीटर प्रतिघंटे के तूफान ने सबको सकते में डाल दिया था। अपने देश में मानसून-चक्र एक दैवीय वरदान माना जाता है। नियत समय पर मानसून आता है और धरती की प्यास बुझाकर उसे हरियाली एवं फसलों से भर देता है, परंतु मानसून-चक्र भी बहुत बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। इसलिए कहीं अनावृष्टि तो कहीं अतिवृष्टि का सामना करना पड़ रहा है। इस वर्ष भी कमजोर मानसून की शुरुआत हुई है।

वर्षा चक्र की इस अनियमितता के कारण पूर्वोत्तर राज्यों में जहाँ औसतन १२०० मिलीमीटर बारिश हुआ करती थी, वह घटकर ४०० मिलीमीटर के आस-पास रह गई है। चेरापूँजी जैसा स्थान, जो भारत का सर्वाधिक बारिश का स्थान माना जाता था, उसे सन् २००८-०९ में सूखे का सामना करना पड़ा। पूर्वोत्तर राज्य, जो सदा जल से आप्लावित रहता था, अब जल की समस्याओं से घिरा हुआ है। दिबांग नदी जो आगे बढ़कर ब्रह्मपुत्र बन जाती है, अब अपने अस्तित्व से जूझती हुई प्रतीत हो रही है, उसकी विशाल जलराशि में कमी आई है। ब्रह्मपुत्र के अंदर विद्यमान माजुली द्वीप सिकुड़ रहा है। यही स्थिति महानदी, गंगा, यमुना, गोदावरी एवं कृष्णा आदि नदियों की भी है।

ग्रीनलैंड में गरमी बढ़ती जा रही है, अंटार्कटिका का एक बड़ा भू-भाग बरफ से रहित हो गया है। हिमालय में ग्लेशियर पिघल रहे हैं। गोमुख ग्लेशियर, जहाँ गंगा का उद्गम स्रोत है, पीछे खिसकता चला जा रहा है। सन् २०१३ के जून माह में केदार घाटी में अचानक आई बाढ़

के भीषण उपद्रव से सभी परिचित हैं। इसकी कड़ुई यादें हिमालय घाटी में दु:स्वप्न के समान अभी भी पसरी हुई हैं। आँकड़ों की आकृति में मौसम की प्रतिकूलता एवं उसके प्रभाव को देखें तो संभवत: इसे शब्दों में समेटा नहीं जा सकता है।

आखिर प्रकृति हमसे इतनी कुपित एवं क्रोधित क्यों है? कौन है इसका जिम्मेदार? प्रकृति अपनी संतानों के प्रति इतनी बेरुख क्यों हो गई है? प्रकृति तो माता है। अथर्ववेद के बारहवें खंड का प्रथम सूक्त, पृथ्वी सूक्त के नाम से विख्यात है। पृथ्वी सूक्त का पूर्ण सारांश इसके बारहवें मंत्र **'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:'** के शब्दों में प्रतिपादित है। यहाँ पर ऋषियों ने भूमि को माता एवं स्वयं को पृथ्वी का पुत्र कहा है। इस पृथ्वी पर समुद्र तथा नदियाँ और अनेक जलधाराएँ प्रवाहित होती हैं। इसमें अनेक प्रकार के रंग की मिट्टी की परतें हैं। हिमाच्छादित ऊँची चोटियाँ, पर्वत, अरण्य व नदियाँ हैं। इसके वक्षस्थल में बेशकीमती रत्न एवं संपदा समाहित हैं। इस पर सभी जीवधारियों एवं वनस्पतियों का वास है और यह चारों ओर से वायुमंडल से आच्छादित है।

मनुष्य ने अपने क्षुद्र स्वार्थ एवं अहंकार से जब धरती को माता न मानकर उसे शोषण करने वाली भोग्य वस्तु माना एवं निर्ममता से उसका दोहन एवं शोषण किया तो पर्यावरण में संतुलन एवं साम्य, दोनों में बिखराव आने लगा। उद्योगों के अवशिष्ट से वायु, जल एवं स्थल सभी प्रदूषित होने लगे। वृक्षों के कटने से वर्षा-चक्र बाधित हुआ। धरती को खोदने से भूकंप जैसी आपदा का आगमन हुआ। हम अपनी जेब भरने के लिए केवल अपनी सुख-समृद्धि हेतु प्रकृति पर भीषण अत्याचार करते चले गए। प्रकृति, पर्यावरण एवं हम सभी एक दूसरे के परिपूरक हैं, परंतु जब उनके बीच का सौहार्दपूर्ण संबंध टूटता-बिखरता है, तो वर्तमान समय में मौसम की अनिश्चितता के रूप में सामने आता है और उसके दुस्सह-दुष्प्रभाव का सामना करना पड़ता है।

धरती को बचाने के लिए रियो-डी-जेनरो (ब्राजील) से लेकर कोपेनहेगन (डेनमार्क) तक राजनेताओं, वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, प्रकृतिप्रेमियों के जो प्रयास हैं, वे तब तक सार्थक नहीं होंगे, जब तक धरती को हम माता मानकर स्वयं उसकी जिम्मेदारी न सँभालें एवं स्वयं को बहादुर संतान न मानें। केवल चिंता जताने से कुछ नहीं होने वाला है। हम सबको कर्त्तव्यनिष्ठ संतान के रूप में धरती को पोषण, संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। हम सभी की जागरूकता से ही प्रकृति के इस महासंहारक रूप से बचा जा सकता है और मानव जीवन को सुरक्षित रखा जा सकता है।

महर्षि माण्डव्य का गुरुकुल श्रेष्ठ शिक्षा-संस्कारों एवं अनुशासन को प्रदान करने के लिए विख्यात था। गुरुकुल के निवासियों पर कोई किसी तरह का शक नहीं करता था। इसी प्रामाणिकता का लाभ उठाकर एक बार कुछ डाकू उनके आश्रम में छिप गए। राजसैनिकों को इसका पता चला तो वे डाकुओं को पकड़ने आए और महर्षि को उन्हें छिपाने का दोषी मानकर साथ ले गए। राजा को महर्षि के विषय में ज्यादा परिचय न था। उसने जो सजा डाकुओं को सुनाई, वही सजा महर्षि को भी सुनाई। नगरवासियों को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने राजा को वस्तुस्थिति से अवगत कराया। राजा को जब महर्षि का सत्य परिचय मिला तो उसे अत्यधिक ग्लानि हुई और उसने उनसे क्षमा माँगी। महर्षि बोले—"राजन्! इसमें आपकी कोई गलती नहीं है, मैंने पूर्वजन्मों में निरपराध पशु-पक्षियों को प्रताड़ित किया है और आज उसी पापकर्म के दंडस्वरूप मुझे सजा मिली, पर इस जन्म के पुण्यों ने मुझे सुरक्षित कर लिया। जीवन शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम है।

मरने वाला फिर जन्मेगा

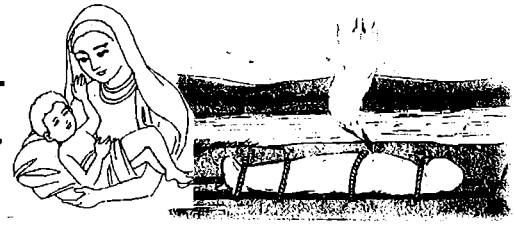

''यह घर मेरा नहीं है। मेरा घर तो मथुरा में है। वहाँ मेरे पति की कपड़ों की बड़ी-सी दुकान है और वो शहर के सबसे अमीर व्यक्तियों में से एक हैं।''—चार साल की शांति ने जब अपनी माँ से ऐसा कहना आरंभ किया तो उनको लगा कि वह खेल-खेल में साथ के बच्चों से कुछ ऐसा सीख आई है। यद्यपि उन्हें थोड़ा अटपटा जरूर लगा कि इतनी छोटी बच्ची को एकदूसरे शहर के बारे में ऐसी जानकारी कैसे है और वह इस कपड़ों की दुकान के मालिक को कैसे जानती है, पर उन्होंने घटना को आया-गया समझकर टाल दिया। शांति देवी का जन्म ११ दिसंबर, १९२६ को भारत की राजधानी दिल्ली में हुआ था और वह बचपन से ही एकांतप्रिय थी। यह पहला अवसर था, जब उसने अपनी माँ से इतनी सारी बातें की थीं।

कुछ दिनों के बाद यह घटना पुन: घटी, पर इस बार उसका स्वरूप भिन्न था। उस दिन शांति देवी ने घर में बना मांसाहारी भोजन यह कहकर खाने से मना कर दिया कि ''माँ! मैं यह भोजन नहीं खाऊँगी। यह भोजन सात्त्विक नहीं है। मैं शाकाहारी हूँ, मेरे मथुरा वाले घर में हमेशा शाकाहारी भोजन बनता है।'' शांति देवी के माता-पिता ने इस घटना के बाद घर में शाकाहारी भोजन बनाने को प्राथमिकता देनी प्रारंभ कर दी, पर तब भी उनके मन में कुछ खटका अवश्य हुआ कि उनकी पुत्री के साथ कोई विचित्र संयोग घट रहा है।

कहीं और समस्या का समाधान न होते देख उन्होंने शांति देवी के विद्यालय के प्रधानाध्यापक से संपर्क किया। इस समय तक शांति देवी आठ वर्ष की हो चुकी थी और उसकी कही गई बातें अड़ोस-पड़ोस में चर्चा का विषय बनने लगी थीं। प्रधानाध्यापक को शंका हुई कि संभवतया कक्षा के कुछ विद्यार्थी शांति देवी को बरगला रहे हों और इसीलिए वह ऐसी बातें कर रही हो। प्रधानाध्यापक ने शांति देवी के सहपाठियों से पूछा तो पता चला कि वह कक्षा में कम ही विद्यार्थियों से बात करती है, पर उससे कुछ पूछने पर यह उत्तर अवश्य देती है कि ''मैं विवाहित हूँ और विवाहिता स्त्री अन्य लोगों से अनावश्यक बातचीत नहीं करती।''

यह सुनकर प्रधानाध्यापक की उत्सुकता बढ़ी, सो उन्होंने शांति देवी को एकांत में बुलाकर बातचीत की। बिना उसे ज्यादा परेशान किए उन्होंने उससे उसके मथुरा वाले संबंध के विषय में प्रेम से पूछा। विश्वास स्थापित हो जाने पर शांति देवी ने प्रधानाध्यापक को बताया कि उसके पति का नाम पंडित केदारनाथ चौबे है और वे मथुरा में एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार के रूप में जाने जाते हैं। यह सुनकर प्रधानाध्यापक को जिज्ञासा हुई कि एक बार इस तथ्य की पुष्टि कर लेनी उचित होगी। कुतूहलवश प्रधानाध्यापक ने एक पत्र चौबे जी को संबोधित करते हुए लिखा और उसमें वर्णन किया कि ''मेरी एक विद्यार्थी शांति देवी दिल्ली के चिराखाना क्षेत्र में श्री रंग बहादुर जी की सुपुत्री है। उसका कहना है कि वह पूर्वजन्म में आपकी पत्नी श्रीमती लुगड़ी देवी के नाम से जानी जाती थी। यह पत्र आपको अन्यथा परेशान करने के उद्देश्य से नहीं लिख रहा हूँ, पर यदि यह वर्णन सत्य प्रतीत हो तो कृपया मुझसे संपर्क कर लें।''

रणेजा स्कूल के प्रधानाध्यापक लाला किशनछोड़ जी को स्वप्न में भी यह आशा न थी कि उनके लिखे इस विचित्र से पत्र का, जिसके ऊपर प्राप्तकर्त्ता का पता भी ढंग से न लिखा हो, उसका कोई उत्तर भी मिल पाएगा। पर विधाता को कुछ और ही स्वीकार था और कुछ हफ्तों के बाद ही उनको पंडित चौबे जी का मथुरा से लिखा पत्र मिला, जिसमें दिए गए सारे विवरण को पूर्णतया सत्य बताया गया। पंडित केदारनाथ चौबे जी ने जवाबी पत्र में तीव्र इच्छा व्यक्त की थी कि उनकी भेंट शांति देवी से कराई जाए, ताकि सत्य अथवा षड्यंत्र का निर्धारण किया जा सके। अत: उन्होंने पत्र डाक से न भेजकर अपने चचेरे भाई के साथ भेजा, ताकि वह अपनी ओर से घटना का आकलन कर सके। शांति देवी उसे देखते ही न केवल उसे पहचान गई, बल्कि उसे उसके घर के नाम से ही संबोधित किया।

इस घटना के घटने के बाद उत्साहित होने की बारी चौबे जी के भाई की थी। शांति देवी से मिलने के बाद उसने तुरंत चौबे जी को दिल्ली आने का समाचार भेजा। चौबे जी का इस अवधि में दूसरा विवाह हो चुका था। अत: वे अपनी दूसरी पत्नी और पहली पत्नी लुगड़ी देवी, जिसको शांति देवी अपने पूर्वजन्म के रूप में वर्णित करती थी, उसके पुत्र के साथ दिल्ली पहुँचे। जब वे माथुर जी के घर पहुँचे तो शांति देवी विद्यालय गई हुई थी, अत: उन्होंने ऐसा नाटक करने का निर्णय किया, जिससे कि सत्यता का पता चल सके।

चौबे जी ने अपना परिचय अपने बड़े भाई के नाम से देने का निर्णय किया, पर शांति देवी जैसे ही विद्यालय से लौटी, उसने तुरंत चौबे जी को पहचान लिया और उनके चरण छूकर कमरे में एक तरफ लज्जावश सिर झुकाए खड़ी हो गई। साथ आए १०वर्षीय बालक को उसने कसकर गले लगाया और प्रसन्नता के मारे रोने लगी, फिर वह दौड़कर अपने कमरे में गई और अपने सारे खिलौने १०वर्षीय नवनीत को दे दिए और बोली—"तेरी माँ ही तो दे रही है। ले, तू सब रख ले।" कमरे में उपस्थित सब लोगों की आँखें यह दृश्य देखकर नम हो गईं और उनके संदेह का आवरण धीरे-धीरे हटकर विश्वास की दीवार में बदलने लगा। जब धीरे से शांति देवी ने चौबे जी से कहा—"आपने मुझे विश्वास दिलाया था कि मेरे मरने पर दूसरा विवाह नहीं करोगे, फिर ऐसा क्यों किया?" तो चौबे जी ने सहमति में सिर हिलाया; क्योंकि यह बात मात्र उनकी प्रथम पत्नी लुगड़ी देवी को ही ज्ञात थी। अब शंका की कोई बात नहीं थी, सबको विश्वास हो गया था कि शांति देवी ही पंडित केदारनाथ चौबे की पूर्वजन्म की पत्नी थी।

इस घटना का समाचार पूरे देश में आग की तरह फैलने लगा। 'इंडियन एक्सप्रेस' समाचारपत्र ने जब ये समाचार छापा तो महात्मा गांधी स्वयं शांति देवी से मिलने दिल्ली पहुँचे। उन्होंने एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया, जो घटना की पूर्ण जाँच कर अपना मत उन्हें प्रस्तुत करे। गांधी जी से निर्देश लेने पर पंद्रह सदस्यीय समिति २४ नवंबर, १९३५ को मथुरा पहुँची। हजारों की भीड़ मथुरा रेलवे स्टेशन पर इस घटना का साक्षी बनने के लिए पहुँची हुई थी। समिति शांति देवी को अपने साथ ही लेकर मथुरा पहुँची थी, ताकि संपूर्ण घटना का निष्पक्ष आकलन किया जा सके।

समिति को यह देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि शांति देवी ने हजारों की भीड़ में खड़े अपने पूर्वजन्म के पति के बड़े भाई को बिना किसी शंका के पहचान लिया और उनके चरण छूकर प्रणाम किया। घर पहुँचने पर उसने यह कहकर अपना आश्चर्य व्यक्त किया कि "घर का रंग बदला हुआ-सा लग रहा है।" उसके इस कथन पर पूर्वजन्म के संबंधियों ने सहमति जताई और कहा कि उसके शरीर छोड़ने के उपरांत घर की पुताई हुई थी और यह सही है कि घर का रंग बदल गया है। न केवल शांति देवी ने अपने घर की हर छोटी-बड़ी वस्तु का सही विवरण बताया, बल्कि वह पूरे समूह को आसानी से अपने पूर्वजन्म के माता-पिता के घर ले गई और दौड़कर अपनी माँ से लिपट गई। इनका भावभरा मिलन देखकर हर किसी की आँखों से अश्रुधार बह निकली और समिति के पास मात्र ये निर्णय देने के कि शांति देवी ही पूर्वजन्म में लुगड़ी देवी थी, कोई और विकल्प शेष न रहा। शांति देवी बाद में पूरे जन्मभर अपने पति को पिछले जन्म में दिए गए वचन के अनुसार अविवाहित रहीं और उन्होंने १९८८ में शरीर छोड़ा।

परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति॥

अर्थात परोपकाररहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार है, उसकी तुलना में तो पशु श्रेष्ठ है, जिसका कम से कम चमड़ा तो लाभकारी होता है।

शांति देवी का उदाहरण एक ऐसा उदाहरण है, जो बड़े-से-बड़े आशंकित मन को भी पुनर्जन्म पर विश्वास करने के लिए विवश कर देता है। ऐसे एक नहीं, अनेक दृष्टांत भारत में ही नहीं, विश्वभर में मिलते हैं, जिनमें लोगों को न केवल अपने पूर्वजन्म की स्मृति थी, वरन उनके द्वारा प्रदान किए गए तथ्यों का अन्वेषण करने पर उनकी धारणा सत्य ही पाई गई। अधिकतर दृष्टांतों से यह पता चलता है कि सामान्यतया उन व्यक्तियों में ये स्मृतियाँ ज्यादा सघन होती हैं, जिनकी मृत्यु पूर्वजन्म में दुर्घटना में या पीड़ादायक अवस्था में हुई हो।

परामनोवैज्ञानिक इसका कारण यह बताते हैं कि पीड़ादायक अवस्था में शरीर छोड़ने पर मनुष्य भावनात्मक

रूप से एक ऐसी सघन अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ एक शरीर से दूसरे शरीर की यात्रा के मध्य घटने वाली घटनाएँ उसके लिए अपरिचित हो जाती हैं और ऐसे में वह इस शरीर की स्मृतियों को दूसरे शरीर तक साथ ले जाता है, जो सामान्य क्रम में संभव नहीं हो पाता। ऐसे उदाहरण मात्र भारत ही नहीं, बल्कि विश्वभर में अनेक स्थानों में, अनेक विशेषज्ञों द्वारा संगृहीत एवं प्रकाशित किए गए हैं, जो पुनर्जन्म की इस भारतीय सोच की पुष्टि करते हैं।

भारतीय चिंतन में पुनर्जन्म की धारणा सदा से ही रही है और आर्ष ग्रंथों में इसका उल्लेख बारंबार आया है। वैदिक वाङ्मय में आधुनिक परामनोवैज्ञानिकों की इस सोच का समर्थन बहुत पहले ही कर दिया गया था कि पूर्वजन्म की स्मृतियाँ उन आत्माओं में सहजता से सुरक्षित रहती हैं, जो अकालमृत्यु अथवा पीड़ादायक मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने इस महाग्रंथ के शासन पर्व में यह घोषणा पूर्ण विश्वास के साथ की है—

ये मृताः सहसा मर्त्याः जायन्ते सहसा पुनः।
तेषां पौराणिको भावः कञ्चित् कालं हि तिष्ठति॥
तस्मात् जाति स्मराः लोके जायन्ते बोध संयुक्ताः।
तेषां विवर्थतां संज्ञा स्वप्नवत् सा प्रणश्यति॥

अर्थात जिनकी मृत्यु अयाचित अथवा अचानक होती है, वे शीघ्र ही पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं और उन्हें अपने विगत जन्म के भाव कुछ समय तक ज्ञात रहते हैं। बड़े होने पर उनकी यह स्मृति ठीक वैसे ही क्षीण हो जाती है, जैसे देखा गया स्वप्न थोड़ी देर बाद धुँधला हो जाता है।

पूर्वजन्म का एक पक्ष तो आत्माओं के आवागमन से जुड़ा है, पर इसके पीछे का दर्शन इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। संपूर्ण विश्व में यह मात्र भारतीय चिंतन की विशेषता है, जिसने इस संपूर्ण सृष्टि को किए गए कर्मों के अनुसार रची व्यवस्था माना। अन्य धर्म, संप्रदाय एवं तत्त्वदर्शन भी इस सृष्टि को इतनी समग्रता के साथ नहीं देख पाए, जितनी समग्रता के साथ भारतीय चिंतन ने उसकी विवेचना की है। भारतीय चिंतन के अनुसार, पूर्वजन्म मात्र आत्माओं के आवागमन का खेल नहीं, बल्कि हमारे द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्मों के परिणामों को पाने की एक स्वचालित सुव्यवस्था है।

पूर्वजन्म को विज्ञान जिस भी दृष्टि से देखे, किंतु सत्य यही है कि इस सृष्टि में यदि आत्माओं के पुनरागमन की व्यवस्था न हो तो उनके द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्मों के फल की प्राप्ति का कोई मार्ग शेष न रहे। यदि आत्माओं को मात्र एक शरीर धारण करना हो तो कर्मों के परिणाम प्राप्त करने की कोई प्रक्रिया न बन पाएगी। पुनर्जन्म की प्रक्रिया सृष्टि में सार्वभौमिक रूप से विद्यमान परमात्मा के कर्मफल विधान की धारणा को पुष्ट करती है। यदि शुभ और अशुभ कर्मों का फल न मिले तो संसार में मात्र अनैतिकता ही हावी रहेगी और सदाशयता एवं आस्तिकता जैसे सिद्धांत कपोलकल्पना मात्र बनकर रह जाएँगे।

यदि यह व्यवस्था मात्र एक जन्म के लिए है तो दुष्ट एवं उद्दंड चरित्र वाले व्यक्ति मनमानी चलाएँगे एवं न्याययुक्त तथा धर्मनिष्ठ जीवन जीने वाले व्यक्ति अन्यथा ही कष्ट पाएँगे। स्वाभाविक है कि परमेश्वर को इस तरह की अनैतिकता स्वीकार नहीं है और इसीलिए उसने पुनर्जन्म की विधि-व्यवस्था निर्धारित की है, जिससे मनुष्य कर्मों को विवेकसंगत एवं धर्मनिष्ठ तरीके से करे, ताकि जिस अनुपम उपहार के रूप में यह मनुष्य जीवन मिला है, उसकी गरिमा अक्षुण्ण रह सके। ❀

समुद्रमंथन से निकले विष को पीते समय शिव जी द्वारा कुछ बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। संयोगवश यह वही मिट्टी थी, जिससे ब्रह्मा जी शरीरों का निर्माण करते थे। ब्रह्मा जी भूलवश उसी मिट्टी से मनुष्य के शरीर बनाते रहे। विष की बूँदें मनुष्य में ईर्ष्या के रूप में प्रकट हुईं और तभी से मनुष्य ईर्ष्यारूपी विष से जलता आ रहा है।

दुविधा छोड़ें, निर्णय लें

सफलता की चाह सभी रखते हैं और इसके लिए अपना श्रम व पुरुषार्थ भी करते हैं, लेकिन सफलता सभी को नहीं मिल पाती; क्योंकि सफलता की राह में मुख्य बाधा है—दुविधा, जो हमारी सफलता प्राप्ति की आशा को निराशा में बदल देती है। दुविधा हमारी आकांक्षाओं को समाप्त कर देती है। यह सफलता की राह में एक ऐसा रोड़ा है, जिसके कारण हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाते। इसके कारण व्यक्ति चयनित मार्ग के नकारात्मक पक्षों को देखने लगता है और कभी आशाजनित सफलता को प्राप्त नहीं कर पाता।

दुविधा एक तरह की द्वंद्व की स्थिति है, जिसमें व्यक्ति निर्णय नहीं ले पाता और न ही स्वतंत्र ढंग से सोच पाता है। सफल लोगों का मूलमंत्र होता है—सही समय पर सही फैसला करना और उस पर अमल करना। विशेषज्ञों के अनुसार—यदि निर्णय लेते समय विकल्प है, तो हम दुविधा में फँसते हैं। जितने अधिक विकल्प होते हैं, उतनी ही अधिक दुविधा होती है कि किस विकल्प का चयन करें? दुविधा की स्थिति में मन इस उलझन में होता है कि किस विकल्प को चुनने से हम सफलता पाएँगे और किस विकल्प के चुनने से हम असफल हो जाएँगे। जाहिर है हम ऐसे विकल्प की तलाश में रहते हैं, जिसको चुनने से हम सफल बनें। कभी-कभी सही विकल्प की तलाश करने के लिए हम दूसरों पर अपने निर्णय छोड़ देते हैं और कभी-कभी यह भी होता है कि सही निर्णय लेने में हम बहुत सारा समय गँवा देते हैं, जो हमें वापस नहीं मिल सकता।

दुविधा से घिरा व्यक्ति हमेशा कार्य पूरा करने में निर्धारित समय सीमा से अधिक समय लेता है। कार्य को देर से पूरा करता है या अधूरा ही छोड़ देता है। कई बार उसे काम समझ में नहीं आता, जिससे उसके पिछड़ जाने का खतरा और भी बढ़ जाता है। ऐसे लोग निर्णय नहीं ले पाते। अगर लेते भी हैं, तो सही निर्णय लेने का फायदा उन्हें नहीं मिल पाता; क्योंकि तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। विशेषज्ञों के अनुसार—दुविधा में रहने वाले व्यक्ति धीरे-धीरे बीमार रहने लगते हैं। उनके निर्णय लेने की दुविधा धीरे-धीरे मानसिक तनाव में परिवर्तित हो जाती है। यदि एक बुद्धिमान व्यक्ति भी लंबे समय तक दुविधाग्रस्त रहता है, तो उसका बुरी तरह से मानसिक क्षरण हो जाता है। इस तरह दुविधा, सफलता की राह में सबसे बड़ी बाधा है। इसीलिए विशेषज्ञों का यह मानना है कि दुविधाग्रस्त स्वभाव उन्नति की राह में सबसे बड़ी बाधा है।

ऐसा बिलकुल भी नहीं है कि सफल लोगों को दुविधा का सामना नहीं करना पड़ता। वे इस दुविधा का अक्सर सामना करते हैं, लेकिन अपने लक्ष्य के प्रति ईमानदार होते हैं। उन्हें पता होता है कि उन्हें करना क्या है। इसलिए भटकने से पहले वे अपनी योजना बना लेते हैं और उसी अनुसार आगे बढ़ते हैं। सामान्यतया व्यक्ति यह समझ नहीं पाता कि दुविधापूर्ण मनःस्थिति उसे एक ऐसे जाल में फँसा देती है, जिससे बाहर निकलना आसान नहीं होता। फलस्वरूप व्यक्ति ठहर जाता है और मिलने वाली सफलता से पीछे हटता चला जाता है। ऐसी स्थिति में यह जरूरी है कि जब कभी जीवन में दुविधा की स्थिति आए तो अपने जीवन को सहज रखा जाए, ताकि सही और गलत के बीच अंतर किया जा सके।

सफलता उन्हें ही मिलती है और उनके कदम चूमती है, जो अपने लक्ष्य के प्रति, अपनी मंजिल के प्रति कभी दुविधाग्रस्त नहीं रहते। दुविधा में रहने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है कि वह निर्णय लेने से घबराता है। उसका आत्मविश्वास कमजोर हो जाता है और फिर वह कभी निर्णय लेने के लिए आगे नहीं बढ़ता। ऐसा व्यक्ति केवल परिस्थितियों का दास बनकर रह जाता है। वास्तव में यह भी एक तरह की हार है, असफलता है।

हमें चाहिए कि हम अपनी परिस्थितियों को इस तरह ढालें कि अपनी योजनाएँ हम खुद निर्धारित कर सकें और फिर परिस्थितियों के अनुसार निर्णय लेते हुए कार्य कर सकें। यही इस दुविधा से बाहर निकलने का

मार्ग है, क्योंकि दुविधाग्रस्त इनसान कभी भी अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता, वह हमेशा समय से पीछे चलता है और जो व्यक्ति समय पर अपना कार्य नहीं कर सकता, वह सफल नहीं है।

सफलता के लिए जरूरी यह है कि सबसे पहले व्यक्ति निर्णय लेने की भूमिका में आगे बढ़े; क्योंकि जीवन में एक कदम भी आगे बढ़ने के लिए हमें निर्णय लेना पड़ता है। यदि हम अपने निर्णय के लिए दूसरों पर निर्भर हैं या निर्णय नहीं ले सकते हैं तो फिर हम आगे भी नहीं बढ़ सकते हैं। केवल दूरदर्शिता व अनुभव के आधार पर निर्णय लेना सहज हो जाता है और सही-गलत निर्णय लेते-लेते खुद ही एहसास होने लगता है कि हम कैसे निर्णय लें। जिंदगी हमें धीरे-धीरे खुद ही निर्णय लेना सिखा देती है लेकिन इसके लिए पहला कदम हमें स्वयं उठाना पड़ता है।

निर्णय लेने में दुविधामुक्त वही रह सकते हैं, जो आत्मविश्वास से भरपूर हों तथा विवेक एवं दूरदर्शिता के साथ परिस्थितियों का आकलन करने में सक्षम हों। ऐसे व्यक्ति कितनी भी विषम परिस्थितियों में दुविधापूर्ण मन:स्थिति के शिकार नहीं होते और सदा संतुलित एवं सहज बने रहते हैं। मनुष्य में आत्मविश्वास अनुभव बढ़ने के साथ-साथ आता है और यदि मनुष्य दुविधा में पड़कर कभी कोई निर्णय ही न ले तो जीवन में अनुभव की वृद्धि कैसे हो सकेगी! अत: यह आवश्यक है कि मनुष्य बिना विचलित हुए, बिना उद्विग्नता का शिकार हुए धीर भाव से परिस्थितियाँ समझे और फिर वह निर्णय ले, जो दूरगामी परिणामों को लाने वाला हो। यदि मन में ईश्वरविश्वास है, तो यह प्रक्रिया व्यक्ति के व्यक्तित्व में सहज ही सम्मिलित हो जाती है और दुविधा ऐसे व्यक्तियों से सदा दूर रहती है। ❀

सम्राट अशोक मृत्युशय्या पर थे। अपनी समस्त संपदा दान देने के बाद भी उनके मन में एक असंतोष का भाव बना हुआ था। भगवान बुद्ध के आह्वान पर उन्होंने करोड़ों मुद्राएँ दान देने का संकल्प लिया था, परंतु संकल्प पूर्ण होने से पूर्व ही वे रुग्ण होकर क्षुब्ध रहने लगे। उन्हें यह समझ नहीं आ रहा था कि ऐसा क्या करें, जिससे अंतर्मन में तृप्ति और संतोष का भाव आ सके। राजकोष का धन भी धीरे-धीरे क्षीण हो रहा था। संकल्पपूर्ति हेतु सम्राट अशोक ने निजी वस्तुएँ भी दान देनी प्रारंभ कर दीं।

एक दिन उनके पास संघ से एक भिक्षु आया। उस दिन सम्राट अशोक के पास दान देने हेतु कोई निज की वस्तु भी न थी। क्षुब्ध हृदय से उन्होंने पास रखा आँवला उठाया और उसे भिक्षु को दे दिया तथा उससे बोले—"बंधु! अब मेरे पास दान देने को ज्यादा कुछ शेष नहीं है। राजकोष पर सम्राट होने के नाते जितना मेरा अधिकार था, उसका उपयोग करते हुए दान दे चुका हूँ। इसी फल को स्वीकार करें।" भिक्षु ने आँवले का चूर्ण बनाकर प्रसाद में मिलाया और वह प्रसाद संघ के समस्त भिक्षुओं को बँट गया। हजारों भिक्षुओं की तृप्ति का समाचार सम्राट अशोक को मिला। उसे सुनकर उनके अंतर्मन में तृप्ति का वह भाव जागा, जो उन्हें सहस्रों स्वर्णमुद्राएँ दान देकर भी नहीं प्राप्त हुआ था। उन्हें अनुभव हुआ कि दिए गए दान का संतोष उसमें निहित परिस्थितियों के आधार पर मिलता है, न कि उसकी विशालता के आधार पर।

कैसे बनाएँ प्यार और सहकार से भरा-पूरा परिवार

परिवार की खुशहाली सभी के लिए मायने रखती है। हर परिवार अपनी खुशहाली चाहता है, लेकिन पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते ही तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं, जिनसे जूझना पड़ता है। इन समस्याओं में सबसे प्रमुख रूप से आर्थिक समस्याएँ सामने आती हैं, जिन्हें अधिकतर निम्न या मध्यमवर्गीय परिवारों को झेलना पड़ता है।

इसके अलावा घर-परिवार के सदस्यों में कलह-क्लेश आएदिन होता रहता है, जो पारिवारिक सुख-शांति को भंग करता है। लेकिन किसी भी परिवार की खुशहाली का आधार आर्थिक संपन्नता मात्र नहीं है, बल्कि इससे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण परिवार के सदस्यों में एकदूसरे के लिए प्यार, सम्मान, विश्वास और समझ की भावना का होना है। ये चारों खुशहाल परिवार के ऐसे आधार स्तंभ हैं, जिन पर सफल पारिवारिक जीवन की नींव टिकी होती है। जितने मजबूत ये स्तंभ होंगे, संबंधों की प्रगाढ़ता भी उतनी ही ज्यादा होगी।

किसी भी परिवार के सदस्यों में यदि आपस में प्रेम, विश्वास, सम्मान व समझदारी की कमी है तो परिवार का मजबूती से टिका रहना संभव नहीं हो पाता और बात-बात पर कलह-क्लेश उभर आता है। वहीं यदि ये चारों बातें पारिवारिक जीवन में घुली-मिली हैं तो परिवार दिन दूनी, रात चौगुनी प्रगति करता है। परिवार के ये चारों आधारस्तंभ जितने मजबूत होते हैं, उतनी ही मजबूती के साथ परिवार में रिश्तों की डोर प्रगाढ़ होती है और यदि ये आधारस्तंभ कमजोर हैं, तो परिवार के रिश्ते टूटकर बिखर जाते हैं, फिर इन्हें सँभालना व बाँधकर रखना मुश्किल होता है।

परिवार के इन चार आधारस्तंभों में पहला है—आपसी प्यार। यदि प्यार है, तो परिवार है। यदि प्यार नहीं, तो परिवार भी नहीं बन पाता। इसलिए परिवार में प्यार का होना जरूरी है। प्यार हृदय में पनपता है, लेकिन प्यार को बनाए रखने व विकसित करने के लिए कई आवश्यक तत्त्व जरूरी हैं, जैसे—सुरक्षा और विश्वास की भावना एवं समर्थन व सहयोग का एहसास। परिवार में पारिवारिक सदस्यों के मध्य प्यार को पोषित करने के लिए इन बातों का ध्यान रखना पड़ता है, अन्यथा प्यार का कोमल पौधा मुरझाने लगता है। इसे हरा-भरा रखने के लिए सुरक्षा-विश्वास, समर्थन, एहसास व देख-भाल की जरूरत होती है।

परिवार का दूसरा आधारस्तंभ है—विश्वास। विश्वास वह आधार है, जिसके बल पर व्यक्ति कुछ भी करने के लिए तत्पर हो जाता है। विश्वास की नींव धीरे-धीरे मजबूत होती है, फिर भी विश्वास को तोड़ना व जोड़ना व्यक्ति के हाथ में होता है। किसी को अपनी बात का विश्वास दिलाना अलग बात है, और उस विश्वास को कायम रखना दूसरी बात है। विश्वास पर खरे उतरने वाले लोग प्रामाणिक बनते हैं, जिन पर कोई भी आँख मूँदकर भरोसा करता है। यदि परिवार में आपसी विश्वास में कमी है, तो परिवार की संगठित प्रामाणिकता खतरे में पड़ जाती है एवं परिवार के मध्य तनाव एवं कलह का वातावरण बना रहता है।

खुशहाल परिवार का तीसरा आधारस्तंभ है—सम्मान का भाव। जब हम किसी को सम्मानित करते हैं, तो वह गौरवान्वित महसूस करता है और अपमान करते हैं, तो लज्जित होता है। सम्मान वह भाव है, जिसके मिलने पर व्यक्ति प्रफुल्लित होता है और इसके बदले में कुछ देना चाहता है। इसी कारण जब किन्हीं बड़े-बूढ़ों को सम्मान दिया जाता है, उन्हें नमन किया जाता है तो बदले में वे अपना आशीष देते हैं, शुभकामना देते हैं, लेकिन आज की पीढ़ी दूसरों के सम्मान के भाव को उपेक्षित कर रही है।

सम्मान वह भाव है, जिसके आगे सभी नतमस्तक होते हैं और भावों को प्रगाढ़ करते हैं। सम्मान देने से सभी खुश होते हैं, इसलिए परिवार में छोटे-बड़े सभी के सम्मान का ध्यान रखना चाहिए, किसी को भी अपमानित नहीं करना चाहिए। यदि किसी को अपमान का भाव महसूस होता है तो इसके लिए क्षमाप्रार्थी होना चाहिए;

क्योंकि अपमान करके हम किसी को नकारते हैं, अस्वीकारते हैं और सम्मान के द्वारा उसे स्वीकारते हैं।

खुशहाल परिवार का चौथा आधारस्तंभ है—समझदारी। समझदारी वह जरिया है, जिसके आधार पर परिवार में विभिन्न सदस्यों के बीच अच्छा सामंजस्य हो पाता है। समझदारी न होने पर सामंजस्य बिगड़ता है और फिर एकदूसरे के साथ रहना मुश्किल हो जाता है। समझदारी के आधार पर ही उपर्युक्त तीनों आधारस्तंभ मजबूती के साथ टिके रह पाते हैं, अन्यथा सब कुछ बिखरकर रह जाता है। परिवार के ये चारों आधारस्तंभ मजबूत व संतुलित होने पर जीवन खूबसूरत, सफल व खुशहाल होता है। इसलिए तो लोग अपने परिवार को याद करके अपनापन महसूस करते हैं। माता-पिता अपने बच्चों को देखकर सुकून पाते हैं और बच्चे अपने माता-पिता से मिलकर खुशी व सुरक्षा महसूस करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने भी खुशहाल परिवार के लिए कहा है कि—'प्यार और सहकार से भरा-पूरा परिवार ही धरती का स्वर्ग होता है।' इस प्यार और सहकार में वे सभी बातें समाहित हैं, जो एक परिवार के लिए जरूरी होती हैं। इसलिए खुशहाल परिवार के इन आधारभूत स्तंभों का सभी को ध्यान रखना चाहिए और उन्हें पोषित करते रहना चाहिए। ❀

कौरवों से द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद पांडवों को वनवास जाना पड़ा। पांडव वन में रह रहे थे कि उन्हें नीचा दिखाने के उद्देश्य से दुर्योधन दल-बल के साथ वन में पहुँचा। उन्हें यह जताने के लिए कि वह कितने राजसी ठाठ-बाट से सुसज्जित है, उसने वन में आखेट का आयोजन किया। आखेट के क्रम में दुर्योधन के सैनिकों एवं भाइयों ने वन में निवास करते एक यक्ष की भार्याओं से दुर्व्यवहार कर दिया। अपनी पत्नियों के साथ हुए इस दुराचरण से यक्ष क्रोधित हो उठा और उसने दुर्योधन की समस्त सेना को पराजित कर दुर्योधन को बंदी बना लिया।

इस घटना का पता जब पांडवों को चला तो युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा—"हमें अपने भाई दुर्योधन की सहायता करनी चाहिए। इस समय वह संकट में है।" भीम एवं अर्जुन इस निर्देश से सहमत न थे। दोनों ने एक स्वर में कहा—"दुर्योधन हमारा शत्रु है। ठीक है कि वह हमारा भाई है, पर आज तक उसने कौन-सा भ्रातृधर्म निभाया है। आज हम लोग इस वनवास पर उसी की वजह से हैं। उसे मरने के लिए ही छोड़ देना चाहिए।" युधिष्ठिर ने कहा—"बंधुओ! यह ठीक है कि दुर्योधन के मन में हमारे प्रति कलुष है और उसने इसे प्रमाणित करने का कोई अवसर आज तक छोड़ा नहीं है, परंतु यह भी सत्य है कि वह हमारा भाई है। एक छत के नीचे हमारे बीच मतभेद हो सकते हैं, परंतु बाहरी शत्रु के सामने हमें एक परिवार के रूप में दीखना चाहिए, नहीं तो आपसी मतभेद का लाभ दूसरे लोग उठाते हैं।" शेष पांडव धर्मराज की इस बात से सहमत हुए। सबने साथ मिलकर यक्ष से युद्ध किया और दुर्योधन को छुड़ा लाए। पांडवों के व्यवहार ने दुर्योधन को पारिवारिकता का पाठ पढ़ा दिया।

सुसंस्कारी बनाए, वही है शिक्षा

शिक्षा आंतरिक अंकुरण है, बाहरी आरोपण नहीं। शिक्षा आंतरिक प्रतिभा, ज्ञान एवं मूल्यों में वर्द्धन करने का एक सर्वोत्तम माध्यम है। शिक्षा नए मनुष्य को गढ़ने वाले जीवनमूल्यों को अर्थ प्रदान करती है। मनुष्य जीवन के हर तल पर अपरिमित ऊर्जा समायी है। देह, प्राण, मन, बुद्धि के छोटे-छोटे हिस्सों में संभावनाओं के महासागर भरे पड़े हैं। शिक्षा इनकी सही और सटीक अभिव्यक्ति की कला खोजती है, परंतु वर्तमान शिक्षा केवल बाहरी आरोपण का माध्यम बनी हुई है। महत्त्वाकांक्षी किंतु श्रम, साहस और संकल्प से विहीन बेरोजगारों की बढ़ती भीड़ आज की शिक्षा का वर्तमान है।

शिक्षा का वर्तमान जग जाहिर है। सभी इसके वर्तमान स्वरूप से सुविदित एवं सुपरिचित हैं। कभी मैकाले ने जो बीज बोए थे, आज उनकी कँटीली फसल से समूचा देश लहूलुहान हो रहा है, पर मैकाले से मुकाबला कौन करे? यह सवाल आज के दौर में कुछ उसी तरह से है, जिस तरह से कभी चूहों के झुंड में यह सवाल उठता था कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे? नुकसान से सभी परिचित हैं, पर समाधान का साहस कौन करे? आज की शिक्षा में कुंठा, निराशा और हताशा की पर्याय बनी कुछ डिग्रियाँ, उपाधियों के छोटे-बड़े ढेर बचे हैं।

शिक्षा का मूल उद्देश्य है—मनुष्य को उसकी बाहरी और आंतरिक आवश्यकताओं से परिचित कर उनको पूरा करने की कला प्रदान करना। शिक्षा जीवन की भौतिक जरूरतें, जैसे—व्यवसाय, नौकरी एवं सुरक्षा आदि की पूर्ति के साथ ही बौद्धिक, नैतिक एवं आत्मिक मूल्यों की पहचान एवं इनके अभिवर्द्धन की कला प्रदान करती है, मनुष्य के सर्वांगपूर्ण विकास की राह दिखाती है, परंतु दुर्भाग्य से शिक्षा को एकांगी बना दिया गया है। इसे केवल जीविकोपार्जन एवं व्यवसाय प्राप्त करने का एकमात्र जरिया बना दिया गया है और इसी कारण शिक्षा के व्यवसायीकरण का दौर प्रारंभ हुआ।

शिक्षा के व्यवसायीकरण का परिणाम है कि अपने देश में उच्च एवं प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थाओं, जैसे—IIT, NIT, IIM आदि की स्थापना हुई। इन प्रतिष्ठित संस्थाओं से प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में प्रतिभावान छात्र निकलते हैं और देश-विदेश में अच्छी नौकरी प्राप्त कर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाते हैं। अपने यहाँ के विद्यार्थियों की काबिलियत से सारी दुनिया स्तब्ध एवं हैरान है कि आखिर भारतीय छात्र इतने प्रतिभाशाली एवं कुशाग्र बुद्धिसंपन्न कैसे होते हैं! यह प्रशंसनीय एवं सराहनीय है।

व्यावसायिक शिक्षा अपने व्यवसाय में निस्संदेह काफी आगे बढ़ी है, परंतु इसका दूसरा एवं अन्य पहलू उतना ही निराशाजनक एवं चुनौतीपूर्ण है। जो प्रतिभाशाली छात्र उच्च शिक्षण संस्थाओं से निकल रहे हैं, यदि इनके जीवनमूल्यों, समाज एवं राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व के प्रति दृष्टिकोण का पता लगाया जाए तो निराशा ही हाथ लगेगी। इन छात्रों का स्वयं के विचार, भाव एवं आंतरिक क्षमताओं के प्रति समझ और उसका नियोजन नहीं के बराबर है। शिक्षा के रूप में उनको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह केवल जानकारी इकट्ठी करता है और यह बौद्धिक समझ तक सीमित है। वस्तुतः यथार्थ ज्ञान है—अनुभूति, जीवंत प्रतीति।

बौद्धिक ज्ञान मृत तथ्यों का संग्रह है; जबकि यथार्थ ज्ञान जीवंत सत्य का बोध है। इन दोनों में बड़ा अंतर है—पाताल और आकाश जितना; अंधकार और प्रकाश जितना। सच तो यह है कि बौद्धिक ज्ञान कोई ज्ञान ही नहीं है, यह तो बस, ज्ञान का झूठा एहसास भर है। भला अंधे व्यक्ति को प्रकाश का ज्ञान कैसे हो सकता है! बौद्धिक ज्ञान कुछ ऐसा ही है, जो पाठ्य पुस्तकों के पठन-पाठन से प्राप्त होता है। इसलिए इस झूठे ज्ञान को एक महान शिक्षाविद् ने कुछ इस तरह से अभिव्यक्त किया है—"ज्ञान के इस झूठे एहसास से अज्ञान ढक जाता है। इसके शब्दजाल एवं विचारों के धुएँ में अज्ञान विस्मृत हो जाता है। यह तथाकथित ज्ञान अज्ञान से भी घातक है; क्योंकि अज्ञान दीखता हो तो उससे ऊपर उठने की चाहत पैदा होती है, पर वह न दीखे तो उससे छुटकारा

पाना संभव नहीं होता। ऐसे तथाकथित ज्ञानी अज्ञान में ही मर-खप जाते हैं।''

वर्तमान शिक्षापद्धति में जो ज्ञान परोसा जाता है, वह तो केवल बौद्धिक धरातल तक सीमित है, इससे हमारे अंदर दबी-पड़ी सुप्त क्षमताओं का जागरण संभव नहीं है। वह तो हमें केवल जीविकोपार्जन तक सीमित रखता है। शिक्षा का अन्य रूप जिसे विद्या कहते हैं, यही सच्चा ज्ञान है, जो कहीं बाहर से नहीं आता, यह भीतर से जागता है। इसे स्कूल या कॉलेज के पाठ्यक्रम से सीखना नहीं, बल्कि स्वयं के अंदर से उघाड़ना होता है। सीखा हुआ ज्ञान जानकारी है; जबकि उघाड़ा हुआ ज्ञान अनुभूति है। जिस ज्ञान को सीखा जाए, उसके अनुसार जीवन को जबरदस्ती ढालना पड़ता है। फिर भी वह कभी संपूर्णतया स्वयं के अनुकूल नहीं बन पाता। सीखे हुए ज्ञान और जीवन में हमेशा एक अंतर्द्वंद्व बना ही रहता है, पर जो ज्ञान उघाड़ा जाता है, उसके आगमन से ही आचरण सहज उसके अनुकूल हो जाता है। सच्चे ज्ञान के विपरीत जीवन का होना एक असंभावना है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।

वर्तमान शिक्षा में विद्या का समावेश होना आवश्यक है। शिक्षा के साथ छात्रों को जीवन जीने की कला, जीवन प्रबंधन एवं जीवन मूल्यों की नैतिक शिक्षा की भी जरूरत है। वर्तमान स्थिति का समाधान क्रांति की नई रोशनी में है। इसी के उजाले में नए जीवनमूल्य दिखाई देंगे। छात्रों की दशा सुधरेगी और उन्हें सही दिशा मिलेगी। इस शिक्षा-क्रांति से ही शिक्षा के परिदृश्य में छाया हुआ कुहासा मिटेगा और उसका विद्या वाला स्वरूप निखरकर सामने आएगा। तभी पता चलेगा कि शिक्षा जीवन की सभी दृश्य एवं अदृश्य शक्तियों का विकास है। तभी जाना जा सकेगा कि विचार और संस्कार से ही व्यक्तित्व गढ़े जाते हैं।

वर्तमान शिक्षापद्धति में इसी विचार एवं संस्काररूपी व्यक्तित्व गढ़ने की कला जोड़नी होगी। इसके बिना पुस्तकीय ज्ञान गरदनतोड़-कमरतोड़ के सिवाय और कुछ नहीं। शिक्षाजगत में एक नई क्रांति होने से सूझ-बूझ, सोच-समझ के नए आदर्श प्रकट होंगे और तभी साहस, संकल्प एवं श्रम की सामर्थ्य से भरे-पूरे प्रचंड आत्मबल के धनी मनुष्यों का जन्म होगा। रोने-गिड़गिड़ाने वाले, दीन-हीन, सम्मान और स्वाभिमान से विहीन, परमुखापेक्षी मनुष्य कहे जाने वाले प्राणियों की भीड़ छँटेगी। आज इसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिसे अपनाना चाहिए।

नवयुग की चेतना घर-घर पहुँचाने और जन-जन को जाग्रति का संदेश सुनाने का ठीक यही समय है। इन दिनों हमारी भूमिका युगदूतों जैसी होनी चाहिए। इन दिनों हमारे प्रयास संस्कृति का सेतु बाँधने वाले नल-नील जैसे होने चाहिए। खाई कूदने वाले अंगद की तरह, पर्वत उठाने वाले हनुमान की तरह यदि पुरुषार्थ न जगे तो भी गिद्ध-गिलहरी की तरह अपने तुच्छ को महान के सम्मुख समर्पित करना तो संभव हो ही सकता है। गोवर्धन उठाते समय यदि हमारी लाठी भी सहयोग के लिए न उठी तो भी स्रष्टा का प्रयोजन पूर्णता तक रुकेगा नहीं। पश्चात्ताप का घाटा हमें ही सहना पड़ेगा।

साहसिक शूरवीरों की तरह अब नवयुग के अवतरण में अपनी भागीरथी भूमिका आवश्यक हो गई है। इसके बिना तपती भूमि और जलती आत्माओं को तृप्ति देने वाली गंगा को स्वर्ग से धरती पर उतरने के लिए सहमत न किया जा सकेगा।

— परमपूज्य गुरुदेव

राग-द्वेष के रूप में मधु-कैटभ का जन्म

आदिशक्ति की लीलाकथा, उनकी लीलाओं की स्मरणकथा है। आदिशक्ति सृष्टि की आदि हैं। सृष्टि की संपूर्ण ऊर्जाएँ, सारा सृजन-विस्तार उन्हीं से उपजता है। वे अनंत हैं, उनका विस्तार ही विस्तार है। इस विस्तार का कोई अंत नहीं है। कोटि-कोटि ब्रह्मांड, इनमें अनगिनत रूप और आकार उनकी महिमा गाते हैं। कहीं पर वे प्रत्यक्ष हैं, तो कहीं परोक्ष; कहीं प्रकट हैं, तो कहीं अप्रकट; कहीं व्यक्त हैं, तो कहीं अव्यक्त; पर सर्वत्र हैं वे ही। उनके सिवाय कहीं पर कुछ भी नहीं है। सत्, रज व तम की त्रिगुणधाराएँ उन्हीं से प्रकट हुई हैं। वे त्रिगुणमयी और त्रिगुणातीत एक साथ हैं। ब्रह्मा, विष्णु व शिव तथा महासरस्वती, महालक्ष्मी व महाकाली उन्हीं के रूप हैं। कल्प-कल्प में उन्हीं की कथाएँ कही जाती हैं। इन कथाओं में परस्पर भिन्नता है, विरोधाभास है, पर सभी सत्य हैं। आदिशक्ति का स्वरूप है ही कुछ ऐसा, जिनसे सभी भिन्नताएँ प्रकट होती हैं, फिर उनमें ही मिल जाती हैं। उन्हीं में से विरोध जन्मते हैं, फिर उन्हीं में समाहित हो जाते हैं।

आदिशक्ति की लीलाकथा की पिछली कथा-कड़ियों में इस सत्य को विविध रूप से कहा गया है। पिछली कथा-कड़ी में महर्षि मेधा ने महाराज सुरथ को उनके स्वरूप का बोध देते हुए कहा—"हे राजन्! जब वे देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए प्रकट होती हैं, उस समय वे लोक में उत्पन्न हुई कहलाती हैं। अपने भक्तों की भक्ति के संरक्षण के लिए, दुष्ट-दानवों के संहार के लिए, वे अजन्मा होते हुए जन्म लेती हैं। तत्त्वमयी होकर मायामयी बनती हैं। नित्य होकर भी इस अनित्य जगत में प्रकट होती हैं। उनके इस तरह प्रकट होने की, भिन्न-भिन्न कल्पों में विभिन्न कथाएँ कही जाती हैं। इन कथाओं में उनके नाम, रूप, गुण व लीला का विविध ढंग से चित्रण होता है।"

ऐसी ही एक कल्पकथा का इस आदिशक्ति की लीलाकथा में वर्णन है। इस वर्णन को महर्षि मेधा, महाराज सुरथ से कहते हैं—

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥ १/१/६७॥

अर्थ= कल्प के अंत में जगत के एक कारण—समुद्र में परिणत होने पर भगवान सबके प्रभु अर्थात स्वामी विष्णु जब शेषनाग को शय्या रूप में विस्तृत कर भगवती योगनिद्रा के आश्रय में चले गए तब उनके कान के मैल से दो भयानक असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभ के नाम से विख्यात हुए।

भक्त कवि का काव्यानुवाद—

जग की एकार्णवी दशा में, कल्प अंत में जब भगवान।
बना शेष को शय्या हरि थे, सोए योगनींद धर ध्यान॥

भगवती की लीलाकथा का यह प्रसंग कल्प के अंत का है। (१) सतयुग, (२) त्रेतायुग, (३) द्वापरयुग एवं (४) कलियुग—इन चार युगों का एक महायुग होता है। इस तरह एक सहस्र महायुगों का ब्रह्मा का एक दिन या एक कल्प अथवा सृष्टिकाल होता है। उसके बाद एक सहस्र महायुगों की ब्रह्मा की एक रात्रि या प्रलयकाल होता है। प्रलय में ब्रह्मा और उनके साथ उनकी सृष्टि का माया में लय हो जाता है तथा प्रलय के अंत में पुनः माया द्वारा सृष्टि का उदय होता है। सृष्टि के इसी काल में भगवती जब-तब भक्तों के हित के लिए, सृष्टि के संरक्षण के लिए स्वयं को प्रकट करती हैं।

भगवती के प्रकट होने की कथा—चर्चा देवीभागवत में ५/३३/५५-५९ के प्रसंग में विस्तार से की गई है—

न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप! तस्याः कदाचन।
नित्यैव सा परा देवी, कारणानां च कारणम्॥
वर्तते सर्वभूतेषु, शक्तिः सर्वात्मना नृप!
शव-वच्छक्ति-हीनस्तु, प्राणी भवति सर्वथा॥
चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु, रूपं तस्यास्तदेव हि!
आविर्भाव-तिरोभावौ, देवानां कार्य सिद्धये॥
यदा स्तुवन्ति तां देवाः मनुजाश्च विशाम्पते।
प्रादुर्भवति भूतानां, दुःखनाशाय चाम्बिका॥

अर्थात—हे राजन्! महामाया के अनादि होने से उनकी किसी भी काल में उत्पत्ति नहीं होती। वे परमा देवी

कारणों की भी कारण हैं, अत: नित्या हैं। वे सब प्राणियों में शक्तिरूप में विद्यमान हैं। उस शक्ति से रहित होकर प्राणी शव के समान हो जाता है। सब प्राणियों में जो चित्-शक्ति है, वह उन्हीं का रूप है। ऐसी दशा में देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। जब भी देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं, तब ही अंबिका उनके दु:ख को दूर करने के लिए प्रकट होती हैं।

उनके स्वरूप के बारे में देवीभागवत में इससे आगे कहा गया है—

नानारूपधरा देवी, नानाशक्ति-समन्विता।
आविर्भवति कार्यार्थं, स्वेच्छया परमेश्वरी॥

अर्थात इस प्रकार वे परमेश्वरी अपनी इच्छा से नाना रूप धारण करती हैं और नाना शक्तियों से युक्त होती हैं और भक्तों के कार्य को सिद्ध करती हैं।

इस कथा-प्रकरण में एक बात यह भी है कि कल्प के अंत में भगवान विष्णु शेषशय्या पर भगवती योगनिद्रा के आश्रय में चले गए और तब मधु-कैटभ नाम के भीषण असुर हुए। यहाँ वर्णित योगनिद्रा को सामान्य क्रम में यह मान लिया जाता है कि विष्णु भगवान सो गए थे। परंतु योगनिद्रा सामान्य क्रम की निद्रा अवस्था नहीं है। श्रीदुर्गासप्तशती के प्रथम चरित्र की देवता महाकाली हैं। महाकाली को ही इस प्रकरण में 'योगनिद्रा' कहा गया है। मार्कण्डेय पुराण में जो वैकृतिक रहस्य है, जिसकी चर्चा श्रीदुर्गासप्तशती के पाठक्रम में भी की गई है, उसमें कहा गया है कि—

योगनिद्रा हरेरुक्ता, महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं, यां तुष्टावाम्बुजासनः॥

अर्थात—कमल पर आसीन ब्रह्मा ने मधु-कैटभ के नाश के लिए जिन देवी की स्तुति की थी, वे ही भगवान विष्णु की योगनिद्रास्वरूपिणी तमोगुणप्रधाना 'महाकाली' नाम से कही गई हैं।

श्रीदुर्गासप्तशती के प्रथम, मध्यम एवं उत्तर चरित्र- इन तीन माहात्म्यों में देवी के तीन विभिन्न स्वरूपों का वर्णन हुआ है। ये तीनों एक ही महामाया के विभिन्न प्रकाश हैं। महामाया का तामसिक प्रकाश 'महाकाली', राजसिक प्रकाश 'महालक्ष्मी' और सात्त्विक प्रकाश 'महासरस्वती' नाम से प्रसिद्ध है। महामाया के इन स्वरूपों के संबंध में देवीभागवत (१/२/१९-२०) में कहा गया है—

निर्गुणा या सदा नित्या, व्यापिकाऽविकृता शिवा।
योग गम्याऽखिलाधारा, तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ति, राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीः सरस्वती, महाकालीति ताः स्त्रियाः॥

अर्थात—जो निर्गुणा, नित्या, शिवा, निरंतर सर्वव्यापिनी और विकाररहिता हैं, जो योग से ही जानी जा सकती हैं, जो संपूर्ण सृष्टि की आधारस्वरूपा हैं, जो तुरीय चैतन्य रूप में अवस्थित हैं, उन्हीं के सगुणावस्था में तीन स्वरूप हैं—सात्त्विकी शक्ति 'महासरस्वती', राजसी शक्ति 'महालक्ष्मी' और तामसी शक्ति 'महाकाली'। ये सभी स्त्रीरूपा हैं।

इन्हीं योगगम्या योगनिद्रा के ध्यान में भगवान विष्णु लीन थे। जिस शेषनाग पर वे आसीन थे, वह हजार अथवा अनंत ऊर्जाओं का प्रतीक है। इसी कारण शेषनाग का एक नाम अनंत भी है। ये अनंत ऊर्जाएँ भगवान श्रीहरि का शयन आसन हैं, जहाँ वे योगनिद्रा के ध्यान में लीन होते हैं।

इसी अवस्था में भगवान श्रीहरि के कानों के मैल से मधु-कैटभ उत्पन्न हुए। **यह मैल—विकार है और मधु-कैटभ इस विकार की अभिव्यक्ति। इनमें मधु का अर्थ है मीठा और कैटभ का अर्थ है—कड़ुआ। इन मीठे-कड़ुए को राग और द्वेष के रूप में भी समझा जा सकता है।** राग और द्वेष ही आसक्ति और घृणा के रूप में सामने आते हैं। इनकी अधिकता सृष्टि के विकास में बाधा बनती है।

इस श्लोक-मंत्र में निहित दार्शनिक-आध्यात्मिक भावों के साथ इसका अपना विशेष साधना-विधान है, जो निम्न है—

॥ साधना-विधान ॥

विनियोगः-ॐ अस्य श्री 'आस्तीर्य शेषमभजत्' इति सप्तशती सप्तषष्ठ मन्त्रस्य श्रीअसित ऋषिः, श्रीमहाकाली देवता, क्लूं बीजं, लाकिनी शक्तिः, श्रीज्येष्ठा महाविद्या, तमोगुणः, मनः ज्ञानेन्द्रियं, मृदु रसः, पाद कर्मेन्द्रियं, मृदु स्वरं, जल तत्त्वं, निवृत्ति कला, क्रीं उत्कीलनं, महायोनि मुद्रा, मम ज्ञानभक्ति वैराग्यपूर्वकं क्षेमस्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं श्रीआदिशक्ति वेदमाता' गायत्रीरूपेण श्रीजगदम्बायोगमाया भगवती दुर्गा प्रसाद सिद्ध्यर्थं च नमोयुत प्रणव वाग्बीज, स्वबीज, लोम-विलोम पुटितोक्त मंत्र जपे विनियोगः।

॥ न्यासः ॥

	करन्यासः	षडङ्गन्यासः
ॐ ऐं क्लूं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
नमो नमः	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
आस्तीर्य शेषमभजत्	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
कल्पान्ते भगवान् प्रभुः	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
तदा द्वावसुरौ घोरौ	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
विख्यातौ मधु-कैटभौ	करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

॥ ध्यानम् ॥

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्। नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

॥ मंत्र ॥

ॐ ऐं क्लूं नमः

आस्तीर्य शेषमभजत्, कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ, विख्यातौ मधु-कैटभौ॥
नमो क्लूं ऐं ॐ॥ ६७॥

१,००० जपात् सिद्धिः—तिल-घृत होमः।

गायत्री महामंत्र जप—१०,०००—गायत्री विधानेन दशांश होमः।

१० माला गायत्री, १ माला सप्तशती मंत्र। इस तरह से १० दिन का विधान। तदुपरांत प्रत्येक का. दशांश हवन।

आध्यात्मिक फलश्रुति—तमस् का निवारण।

लौकिक फलश्रुति—मन की पीड़ा का शमन।

गायत्री महामंत्र के साथ इस सप्तशती मंत्र की साधना के परिणाम साधक को शुभता की ओर ले जाते हैं। यदि साधना अविराम रहे, मन उसमें लीन रहे तो शीघ्र ही अंतश्चेतना से तमस् का निवारण-निराकरण होता है। तमस् के कारण मन की विकृतियाँ—विकार भी स्वभावतः दूर होने लगते हैं। इस क्रम में उत्तरोत्तर मन की पीड़ाएँ दूर होती हैं। मानसिक अवरोधों का शमन होता है। इसी के साथ इसकी निरंतरता से साधक के अंतर्भाव में योगशक्ति का उदय होता है। यह अनुभूति प्रगाढ़ होने लगती है कि वह महामाया से अभिन्न व अभेद है। सच तो यह है कि विकृतियाँ—विकार ही मन के प्रकाश को आच्छादित करते हैं। इन्हीं के कारण जीवन प्रभु से पृथक है, इसका आभास व विश्वास होने लगता है। इन विकारों के हटने पर स्वतः ही भगवत्ता, ईश्वरीयता की अनुभूति होने लगती है। तब स्वयं ही आंतरिक एवं बाहरी अवरोध समाप्त होने लगते हैं। ❀

एक गाँव में एक व्यक्ति रहा करता था। उसकी अभिलाषा थी कि वह तीर्थाटन पर निकले, परंतु उसके वृद्ध पिता के साथ रहने के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाता था। कोई और उपाय न निकलता देख, वह उनको साथ लेकर ही तीर्थयात्रा पर निकला। पिता के स्वास्थ्य के कारण मार्ग में कई बार रुकना पड़ता तो उसके मुख पर आए खीज के भाव यद्यपि बाहर नहीं निकलते थे, तब भी दिखाई तो पड़ ही जाते थे। एक दिन उसने राह में एक छोटी-सी बच्ची को देखा, जो अपनी गोद में एक छोटे से बालक को लिए जा रही थी। उत्सुकतावश उसने बालिका से पूछा—"बेटा! तुम इस बालक को इतनी देर से गोद में लिए हुए हो, तुम्हें वजन नहीं अनुभव होता?" बच्ची ने उत्तर दिया—"मैं तो अपने भाई को गोद में लिए हुए हूँ, उसे उठाने में भला कैसे भार लगेगा! पर ऐसा लगता है, जैसे आप किसी अपरिचित को साथ ले आए हैं; क्योंकि आपके चेहरे पर जरूर थोड़ा भार आ गया है।" व्यक्ति को महसूस हुआ कि प्रेम से किया गया कार्य कभी बोझ नहीं बनता, पर अनमने भाव से किया गया कार्य बोझ जरूर बन जाता है।

वरदान है एकांत, इसे अभिशाप न बनने दें

एकांत एक वरदान है, तो एक अभिशाप भी। एकांत मन की प्रकृति के अनुरूप परिभाषित और परिलक्षित होता है। एक साधक एवं योगी के लिए एकांत के क्षण ध्यान एवं समाधि का सोपान हैं, एक भक्त के लिए भगवान से मिलन का मधुर अनुभव और एक वैज्ञानिक एवं चिंतक के लिए ये ही शोध एवं विचार के क्षण हैं, परंतु कुछ लोगों के लिए ये ही क्षण अकेलेपन के बोझ की तरह हो जाते हैं।

एकांत हमें आनंदित भी करता है और डराता भी है। अकेले में कोई हर्षविभोर होकर कीर्तन करता है तो कोई इससे भागकर किसी अन्य साथी-सहचर की भीड़ तलाश करता है। आखिर ऐसा क्यों है ? क्या इसका मनोविज्ञान है कि एकाकीपन का अनुभव अलग-अलग लोगों को अलग-अलग प्रतीत होता है ? दरअसल हमारा मन ही है इसके केंद्र में। यदि मन स्वस्थ, सुदृढ़ एवं शांत होता है तो एकाकीपन हमारा सबसे बड़ा मित्र एवं शुभेच्छु बन जाता है, परंतु रुग्ण एवं दुर्बल मन के लिए अकेलापन किसी दु:स्वप्न के समान भीषण एवं डरावना लगता है। ऐसे में हम एकाकीपन से डरते-घबराते और भीड़ की ओर भागते हैं और भीड़ में सुकून प्राप्त करते हैं।

मनोवैज्ञानिकों की मानें तो एकाकीपन में हमारे अचेतन में दबी कड़ुई यादें एकाएक उजागर हो जाती हैं—प्रकट हो जाती हैं, जिनको हम कभी याद नहीं करना चाहते और न ही उनका सामना करना चाहते हैं। जिन कड़ुई एवं कटु यादों से हम बचना एवं भागना चाहते हैं, वे हमारे अचेतन में दबी-छिपी रहती हैं और एकांत मिलते ही अपने अस्तित्व का आभास करा देती हैं।

अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार, दरअसल जिससे हम डर रहे हैं और जो हमें डरा रहा है, वह कोई और नहीं, बल्कि हमारे अतीत के नकारात्मक कर्मों का परिणाम अर्थात हमारा प्रारब्ध है। हम अकेले में किसी और से नहीं, बल्कि स्वयं से डरते हैं। इस डर से बचने के लिए हम अपने मित्र, साथी, सहपाठी की ओर दौड़ते हैं। समाज या परिवार की भीड़ में ये यादें दब जाती हैं, परंतु समाप्त नहीं होती हैं। मनोवैज्ञानिक इसी खालीपन के पक्ष की ओर संकेत करते हैं। इनके अनुसार हम अधिकतर गलतियाँ एवं अपराध इसी अवस्था में करते हैं। इस संदर्भ में उनका कहना है कि अकेलेपन में बुरी आदतें अपने पूरे वेग से हमें आक्रांत कर लेती हैं और हम पूरी तरह आदतों के मकड़जाल में फँस जाते हैं।

दुर्बल मन खालीपन में नकारात्मक चिंतन, आभासी भय, शंका-कुशंका, संशय-संदेह से भर जाता है और फिर उसके अनुरूप मानसिक वृत्तियाँ बनने लगती हैं। दीर्घकाल तक चलने वाला यह मानसिक व्यापार मानसिक रोगों को जन्म देता है। इससे बचने एवं निकलने के लिए सकारात्मक सोच, रचनात्मक चिंतन एवं सदाचरण की आवश्यकता है। सकारात्मक सोच से हम सदा स्वयं के प्रति सावधान एवं जागरूक बने रह सकते हैं। जागरूक बने रहने से चोर दरवाजे से नकारात्मक विचार प्रवेश नहीं कर सकते और हम सकारात्मक विचारों को बनाए रख सकते हैं। इसके लिए हमें स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय मन का स्नान है, जिससे नकारात्मक विचार गल-गलकर मिटते रहते हैं।

अकेलेपन का साथी है—अच्छी पुस्तकें। जिनकी मित्रता अच्छी किताबों से हो गई, समझो वे कभी अकेले हो ही नहीं सकते; क्योंकि उनका मन सदा सद्विचारों से अभिप्रेरित रहता है। अकेलेपन से जन्मी समस्याओं से बचने के लिए हमें स्वयं को रचनात्मक एवं अच्छे कार्यों में नियोजित करना चाहिए। मन को अधिक समय तक व्यस्त रखना मुश्किल है, इसलिए मन को उस कार्य में व्यस्त रखना चाहिए, जिसे वह पसंद करे, उसमें रम जाए। इसके लिए अच्छे एवं रचनात्मक कार्यों की सूची रहनी चाहिए; ताकि मन को अनियंत्रित होने का अवसर न मिले।

मन यदि मजबूत हो तो अकेलेपन में ही सर्वश्रेष्ठ कार्य का संपादन किया जा सकता है। इतिहास गवाह है कि विश्व के श्रेष्ठतम कार्य एकांत में संपन्न हुए हैं, जिस एकांत से लोग भागते रहे, उसी एकांत में महान विचारकों

ने दुनिया को विस्मित करने वाले आविष्कार एवं अनुसंधान संपन्न किए हैं। जीवन के प्रति गंभीर दृष्टि रखने वाले संत, महात्मा जीवन को सर्वोच्च ग्रंथ मानते हैं, जिसके पन्नों में रहस्य-रोमांच के अद्‌भुत सूत्र समाहित हैं। इन जीवन-सूत्रों की विवेचना, विश्लेषण एवं व्याख्या जनसंकुल में संभव नहीं है, केवल एकांत में ही की जा सकती है। इसलिए तो कविवर रवींद्रनाथ ने 'एकला चलो रे' का नारा बुलंद किया।

योगी, महात्मा एवं संत अपने जीवन में कभी अकेलेपन का एहसास नहीं करते। वे अकेले हो ही नहीं सकते। एक बार एक महात्मा घोर जंगल के सन्नाटे में एक वटवृक्ष के नीचे शांत, मौन एवं एकांकी बैठे हुए थे। वहाँ से गुजरने वाला एक यात्री भी एकाकी वहाँ से गुजर रहा था। वह अपने अकेलेपन से परेशान एवं चिंतित था। वह अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए किसी की तलाश में अपनी नजरें घुमा रहा था कि उसे वे महात्मा दीख गए। वह भागा-भागा गया और महात्मा को झकझोरकर कहा—"मैं कब से किसी की तलाश कर रहा था कि उससे कुछ बातचीत करूँ।" महात्मा ने धीरे से आँखें खोलकर उसकी दीनता पर दयार्द्र होकर कहा—"वत्स! मैं कहाँ अकेला था। मैं तो अपने परम प्रिय भगवान के साथ मिलन के मधुर आनंद का अनुभव कर रहा था। भगवान के साथ का अनुभव हो तो मनुष्य अपने को अकेला कहाँ अनुभव करता है।"

स्वामी विवेकानंद ने अकेले रहने का उपदेश देते हुए कहा था—"अकेले रहो! अकेले रहो!! जो अकेला रहता है, न तो वह दूसरों को परेशान करता है और न दूसरों से परेशान रहता है। जीवन में अकेलापन एक वरदान बने, न कि अभिशाप। अतः हमें श्रेष्ठ विचार, पवित्र भाव एवं सदाचरण के द्वारा अकेलेपन को दूर कर उसे मूल्यवान क्षण में परिवर्तित करना चाहिए।" परमपूज्य गुरुदेव के हिमालय प्रवास की साक्षी पुस्तक 'सुनसान के सहचर' एकांत के क्षणों को स्वर्णिम अवसरों में बदलने का उदाहरण सतत देती है। जिन क्षणों में सामान्य व्यक्ति घबराए और चिंतातुर हो, उन क्षणों को प्रभु का वरदान मानकर उन्हें साधना की अनुभूति में बदल लेने का कार्य महान तपस्वियों द्वारा ही संभव है।

लौकिक जगत में किए गए वैज्ञानिक आविष्कार हों अथवा अलौकिक जगत में संपन्न की गईं साधनाएँ, ये सभी एकांत के दुर्लभ क्षणों में ही संभव हैं। यदि एकांत के क्षणों का सम्यक उपयोग किया जा सके तो उन्हें जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षणों में परिवर्तित किया जा सकता है, अन्यथा वे मात्र हृदयविदारक स्मृतियों को उभारने वाले अभिशाप की तरह हमें संतप्त करते रहते हैं। आवश्यक है कि मनुष्य एकांत के इन बहुमूल्य क्षणों का मूल्य समझे और उन्हें सौभाग्य में बदलने के लिए प्रयत्नशील हो। ❀

प्रसिद्ध गायक तानसेन शहंशाह अकबर के दरबार में कार्यरत थे। एक बार सम्राट अकबर ने उनसे पूछा—"मियाँ तानसेन! आपसे बेहतर गायक तो शायद दुनिया में कोई न हो।" तानसेन ने कहा—"हुजूर! ऐसा कहने से पहले आप एक बार मेरे गुरु संत हरिदास का गायन सुन लें।" जंगल में छिपकर अकबर ने संत हरिदास का गायन सुना तो मुग्ध हो गया और तानसेन से बोला—"आप बुरा न मानें, गाते तो आप भी अच्छा हैं, पर आपके गुरु के गायन में जो रस है, वह आप में नहीं।" तानसेन ने उत्तर दिया—"नहीं हुजूर! इसमें बुरा मानने वाली क्या बात है। आपने जो बोला, वह सच ही बोला। मेरे गुरु भगवान को प्रसन्न करने के लिए गाते हैं और मैं आपको प्रसन्न करने के लिए। स्वार्थ से हर वस्तु का स्तर गिर जाता है और यही सिद्धांत संगीत पर भी लागू होता है।" अकबर को महसूस हुआ कि प्रभु को समर्पित होकर किया गया कर्म, सहज ही दिव्यता को प्राप्त हो जाता है।

प्रकृति के संकेत समझते हैं पशु-पक्षी

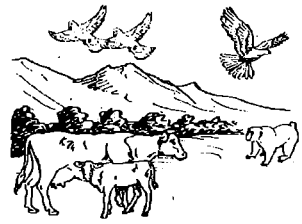

प्रकृति ने पशुओं को मनुष्य से अधिक संवेदनशील बनाया है, तभी तो वे आगामी खतरों का आभास कर लेते हैं और अपने व्यवहार के माध्यम से इसे अभिव्यक्त करते हैं। हालाँकि पशुओं की ऐसी कोई भाषा या बोली नहीं है, जिसे मनुष्य समझ सके, लेकिन फिर भी आने वाले खतरों का आभास होते ही पशु-पक्षी विचित्र ढंग का व्यवहार करने लगते हैं, अपना बचाव करने लगते हैं। यदि मनुष्य पशुओं द्वारा दिए गए इन संकेतों को समझ सकते, तो शायद भीषण प्राकृतिक आपदाओं से वे भी अपना बचाव कर सकते। इसी कारण आज विश्वभर के विशेषज्ञ पशुओं की इस सांकेतिक भाषा का पता लगाने में लगे हुए हैं।

पशु-पक्षिओं को खतरों का पूर्वज्ञान हो जाता है, यह बात अब निर्विवाद है। इसके कई उदाहरण हैं, जो यह दरसाते हैं कि पशुओं को आने वाले खतरों का एहसास समय से पूर्व हो गया था। सन् १९६० के भूकंप में अगादि (मोरक्को) से हजारों पशु-पक्षी भूकंप आने से कुछ घंटे पहले ही वहाँ से प्रस्थान कर गए थे; जबकि इसमें १५ हजार लोग मारे गए थे। इसके तीन साल बाद सन् १९६३ में यूगोस्लाविया में भीषण भूकंप आया, जिसमें कोई दस हजार लोग मारे गए और इस तरह यूगोस्लाविया का स्कार जे नगर मलबे का ढेर बन गया, लेकिन वहाँ के सभी पशु-पक्षी वहाँ से पहले ही पलायन कर चुके थे। ठीक इसी तरह सन् १९६६ में ताशकंद को हिला देने वाले भूकंप के आने से पहले वहाँ के चिड़ियाघर के संचालकों ने जानवरों में अजीब-सी बेचैनी पैदा होने की सूचना दी थी और उन्होंने यह भी देखा कि भूकंप आने से एक घंटा पहले चीटियों की लंबी कतारें जमीन के नीचे से निकलकर अन्य स्थानों को जा रही थीं।

विशेषज्ञों के अनुसार—पशु-पक्षियों में संभवतया विशेष इंद्रियक्षमता होती है, जो उन्हें इस तरह की आपदाओं की पूर्व सूचना दे देती है। कई समझदार लोगों ने पशुओं की इस शक्ति से लाभ उठाकर अपनी जीवन-रक्षा की है। इसके भी उदाहरण हैं। सन् १९४२ की बात है कि मैडबर्ग (जर्मनी) में एक व्यक्ति दाढ़ी बना रहा था कि बिल्ली की आवाज सुनकर उसने दरवाजा खोल दिया। उसने देखा कि दरवाजे के बाहर एक बिल्ली खड़ी है, जो उसके मुहल्ले में इधर-उधर घूमती रहती थी। वह बिल्ली अचानक व्यक्ति का पायजामा पकड़कर बाहर की ओर खींचने लगी और फिर भागी। यह देखने के लिए कि बिल्ली उसे कहाँ ले जाना चाहती है, वह भी बिल्ली के पीछे-पीछे दौड़ने लगा। करीब आधा किलोमीटर जाने के बाद बिल्ली ने भागना बंद कर दिया, लेकिन उसी क्षण ब्रिटिश वायुसेना के विमानों ने उस घर में बमवर्षा की; जिसमें वह व्यक्ति रहता था और उसके देखते ही देखते उस घर की इमारत मिट्टी के ढेर में तब्दील हो गई। जब वह व्यक्ति अपने घर लौटा तो अपने को सुरक्षित देख उसके मन में बिल्ली के प्रति गहरा आभार जागा जिसने उसके प्राणों की रक्षा की थी।

मनुष्य को छोड़कर बाकी अन्य प्राणी यह आभास कर लेते हैं कि किस तरह की घटनाएँ घटने वाली हैं। इसी कारण नष्ट होने वाले जहाज से चूहे निकलकर भागने लगते हैं। आकाशीय बिजली व तेज तपन से जंगलों में आग लगने से पूर्व बंदरों की टोलियाँ जंगल छोड़कर चली जाती हैं। भारी तूफान की संभावना होने पर ध्रुवीय भालू खाना छोड़ देते हैं; जबकि मौसम विभाग के लोग इस बारे में नहीं जान पाते।

ये सब उदाहरण हैं, जो यह दरसाते हैं कि पशु-पक्षियों को आगामी खतरों व घटनाओं का पूर्वाभास हो जाता है। ये सब कैसे होता है, इसका कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं है। ये सब तो उन्हें प्रकृतिप्रदत्त उपहार हैं, जिनके द्वारा वे प्रकृति में आगामी घटनाओं को महसूस कर लेते हैं और अपने बचाव हेतु प्रतिक्रिया करते हैं। सत्य यही है कि प्रकृति ऐसे संकेत हमें भी देती है, परंतु प्रकृति से मुँह मोड़ लेने के कारण न तो हम उन्हें समझ पाते हैं और न ही उनके आधार पर अपने जीवन के लिए सुरक्षित व्यवस्था बना पाते हैं। यदि हम भी मूक संकेतों को समझ सकें, तो इन भीषण आपदाओं से बचाव कर सकते हैं।

भारतमाता के क्रांतिकारी पुजारी

''इकबाल! डॉ० मथुरा सिंह न होते तो शायद मैं अपने जिगर के टुकड़े, अपने बच्चे को खो देता। डॉ० साहब ने खुद मेरे घर आकर मेरे बच्चे का इलाज किया और मुफ्त में ढेर सारी दवाएँ देकर चले गए। उन जैसा नेकनियत इनसान मैंने कभी देखा नहीं। उन्होंने मेरी पत्नी पर आए संकट को भी दूर किया था।''—हामिद दिल खोलकर डॉ० मथुरा सिंह को दुआएँ देता जा रहा था। इकबाल ने कहा—''ठीक कहते हो हामिद! हम लोगों के बीच ऐसा कोई नहीं है, जो डॉक्टर साहब की तरह सच्चे दिल से सेवा कर सके। उनकी दवा से तो जिंदगी बख्श जाती है, मरता आदमी भी जी उठता है।''

डॉ० मथुरा सिंह अफगानिस्तान में चिकित्सा के सर्वोच्च अधिकारी थी। वे दिन-रात बड़ी लगन से बीमार और रुग्ण लोगों की चिकित्सा एवं सेवा करते थे, पर वे चिकित्सक कम, भारतीय क्रांतिवीर अधिक थे। वे तो अँगरेज जासूसों को चकमा देकर काबुल पहुँचे थे, परंतु नियति ने उनको चीफ मेडिकल ऑफिसर बना दिया था, परंतु वे शांत नहीं थे, उनके मस्तिष्क में भारत माता की बेड़ियों को तोड़ने एवं उसकी आजादी की योजनाएँ निरंतर बनती रहती थीं। इसी बीच काबुल में भारत के महान क्रांतिकारी राजा महेंद्रप्रताप तथा मौलाना मुहम्मद बरकतुल्ला का आगमन हुआ। उन्होंने वहाँ अस्थायी 'आजाद हिंद सरकार' की स्थापना की। इस सरकार ने जर्मनी की 'बर्लिन कमेटी' के सहयोग से रूस के जार के पास दो सदस्यों का एक शिष्टमंडल भेजा, जिसके एक सदस्य स्वयं डॉ० मथुरा सिंह और दूसरे सदस्य खुशी मुहम्मद थे।

डॉ० मथुरा सिंह एवं खुशी मुहम्मद कई ऊँटों पर अपना सामान लदवाकर चले और रूस के जार के लिए भारतीय क्रांतिकारियों की ओर से सोने की एक ठोस चद्दर पर खुदा हुआ एक पत्र ले गए। खुशी मुहम्मद ने रास्ते में कहा—''डॉक्टर साहब! आप तो वास्तव में एक ज्वलंत एवं प्रखर क्रांतिकारी हैं। देश के प्रति आपके जज्बे को मैं सलाम करता हूँ। यहाँ तो लोग आपको इस रूप में नहीं जानते, पर आपको यहाँ भगवान के समान मानते हैं। इसका क्या रहस्य है कि आपने इतने कम समय में लोगों का दिल जीत लिया है?''

डॉ० मथुरा सिंह ने कहा—''मित्र! लोगों का प्यार पाने एवं दिल जीतने के लिए स्वयं का हृदय उदार एवं संवेदनशील होना चाहिए। स्वयं में परदुःखकातरता होनी चाहिए। ऐसा हृदय, जो दूसरों के लिए धड़के; औरों की पीड़ा-परेशानी को स्वयं का माने; औरों के लिए अपना सर्वस्व लुटाने के लिए सदा तत्पर रहे; जो देना जानता है, लेने में विश्वास नहीं करता, वही औरों का दिल जीत सकता है। मैंने यहाँ पर सच्चे दिल से लोगों की सेवा की है और इसी का परिणाम है कि हमें लोगों का बे-इंतिहा प्यार मिला। हृदय उदार न हो तो हम अपने देश से कैसे प्रेम कर सकते हैं, देश के लिए कैसे मर सकते हैं! जिससे हमं प्रेम करते हैं, उसके लिए हम अपना सर्वस्व लुटा देने की हिम्मत रखते हैं। हम राष्ट्रप्रेमी हैं।''

खुशी मुहम्मद ने डॉक्टर साहब के अंदर राष्ट्र एवं उसके जनों के प्रति अथाह एवं अगाध प्रेम की झाँकी देखी। उन्हें अब उनके निजी जीवन के बारे में जानने की प्रबल इच्छा हुई। हालाँकि, कोई क्रांतिकारी अपने बारे में कुछ नहीं बताता था, ताकि कहीं इससे उसकी योजना एवं जान खतरे में न पड़ जाए। ये सब जानते हुए भी मुहम्मद ने पूछा—''मित्र! आप इतने अच्छे एवं उदार डॉक्टर कैसे बने? लोग कहते हैं कि आपके हाथ से अमृत बरसता है। आपकी हर दवा अत्यंत प्रभावकारी होती है और बीमार ठीक हो जाता है।''

डॉ० मथुरा सिंह ने कहा—''मैं यह तो नहीं जानता कि मेरी दवा कितनी असरकारक होती है। दवा का असर होना तो ईश्वर की कृपा है। जहाँ तक मेरे इस पेशे की बात है तो सुनो! मेरा जन्म सन् १८८३ में जिला झेलम के अंतर्गत ढुडियाल नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम सरदार हरि सिंह था। गाँव में पाठशाला की पढ़ाई पूरी करके मैंने चकवाल में हाईस्कूल पास किया। मैट्रिक पास करके मैंने रावलपिंडी में 'मैसर्स जगत सिंह

एंड ब्रदर्स' की फर्म में चिकित्सा का काम सीखा। मैंने वहाँ खूब मन लगाकर काम किया और अपना अलग से दवाखाना खोल लिया और वह खूब चलने लगा।''

मथुरा सिंह कहते जा रहे थे और मुहम्मद सुन रहे थे। वे आगे बोले—''मैं चिकित्सा के गहन अध्ययन हेतु अमेरिका जाना चाहता था, परंतु अर्थाभाव ने मेरे कदमों को चीन के शंघाई में जमा दिया। शंघाई में पैसे की खूब कमाई हुई और मेरी किस्मत मुझे अमेरिका ले गई। वहाँ मेरा कार्य बदल गया और मेरी पैठ क्रांतिकारियों के बीच अच्छी हो गई। मैं जब भारत आया तो मुझे पकड़कर एक विशेष गाड़ी से पंजाब भेज दिया गया। मैं बीच में ही पुलिस को चकमा देकर गायब हो गया, अन्यथा मुझे जेल में डाल दिया जाता।''

इसके आगे डॉ० मथुरा सिंह थोड़ा ठहरकर बोले—''इसके बाद मैंने पंजाब में क्रांतिकारियों के साथ मिलकर बम बनाने का कार्य किया। दैवी कृपा से मेरा बम अचूक होता था। इस कार्य से जहाँ मैं क्रांतिकारियों का जाँबाज सिपाही बन गया, वहीं दूसरी ओर अँगरेजों का कट्टर दुश्मन। बस, ऐसे ही किस्मत मुझे काबुल ले आई, अब आपके साथ रूस के जार से मिलने जा रहा हूँ।''

डॉ० मथुरा सिंह और खुशी मुहम्मद इस विश्वास के आधार पर रूस के जार से मिलने जा रहे थे कि उन्हें स्वाधीनता संग्राम के लिए अपेक्षित सहयोग रूस से प्राप्त हो सकेगा, परंतु होनी को कुछ और ही मंजूर था। काबुल से उनके शिष्टमंडल के प्रस्थान का समाचार अँगरेजों को जैसे ही मिला, उन्होंने रूस के जार पर तुरंत ही राजनीतिक दबाव बनाना प्रारंभ कर दिया। अँगरेजों के दबाव को रूस का जार झेल न सका और डॉ० मथुरा सिंह और उनके साथी को ताशकंद पहुँचते ही गिरफ्तार करवा दिया गया। उन दोनों को गिरफ्तार करके लाहौर भेजा गया, जहाँ अँगरेजों की विशेष ट्रिब्युनल ने उनके विरुद्ध षड्यंत्र करने के आरोप में उन्हें मृत्युदंड सुनाया। २७ मार्च, १९१७ को फाँसी देने का दिन निश्चित किया गया।

अँगरेजों को लगता था कि डॉ० मथुरा सिंह एक पढ़े-लिखे पेशेवर चिकित्सक हैं, वे विदेशी देशों की यात्रा कर चुके हैं, अतः उनके मनोबल को तोड़ना संभवतया आसान होगा। वे शायद फाँसी की सजा सुनने पर टूट जाएँ और साथी क्रांतिकारियों के विषय में सूचना उनको दे दें, परंतु डॉ० मथुरा सिंह ने जीवन शान के साथ जिया था और वे मृत्यु को भी उसी शान से स्वीकारना चाहते थे। अँगरेजों के लाख डराने-धमकाने पर भी वे अविचलित रहे और मृत्यु की अंतिम घड़ी में उसी गौरव के साथ फाँसी के फंदे पर झूल गए, जो जीवनभर उनका सहचर-सहयोगी रहा था। एक ओर तो वे चिकित्सक के रूप में मानवता के रक्षक थे तो वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता सेनानी के रूप में भारतमाता के पुजारी। ❀

बसरा की महिला सूफी संत राबिया की बहुत से लोग भारत के सुप्रसिद्ध संत कबीर से तुलना करते हैं। कबीर की तरह ही राबिया भी उलटबाँसियाँ कहने की आदी थीं और उनकी बातें बहुतों को आसानी से समझ नहीं आती थीं। एक दिन एक व्यक्ति राबिया से बोला—''मैंने सुना है कि जब तकलीफ में कोई किसी का दरवाजा खटखटाता है, तो कभी न कभी वह दरवाजा खुल ही जाता है।'' राबिया ने जब यह सुना तो वे बोलीं—''जो कभी बंद ही नहीं हुआ तो उसके खुलने न खुलने का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है!'' वह व्यक्ति यह सुनकर आश्चर्यचकित हुआ, तो राबिया अपनी बात समझाते हुए बोलीं—''दरवाजे तो लोगों के घरों के बंद होते हैं, पर जो तुम्हारे भीतर रहता है, तुम्हारे दिल में निवास करता है, उसका दरवाजा तो सदा खुला हुआ है।'' वह व्यक्ति पूछने लगा—''मेरे दिल में भला कौन निवास करता है?'' तो राबिया बोलीं—''वही, जो सबके दिल में निवास करता है, उसी का नाम खुदा है। उसका दरवाजा किसी के लिए कभी बंद नहीं होता है।''

विश्व का प्राचीनतम लोकतंत्र

लोकतंत्र की सामर्थ्य व प्रभाव का देशव्यापी दृश्य हम सभी ने पिछले महीनों में देखा। पूरे देश की शासन-सत्ता एक हाथ से दूसरे हाथ में चली गई। जनता ने इस अवसर को समारोह के रूप में मनाया। उत्साहपूर्वक देशभर में लोग अपने-अपने घरों से निकले और उन्होंने अपना मत जताकर देश की शासन-सत्ता परिवर्तित कर दी। समूची दुनिया में इसके चर्चे हुए। विश्वभर में लोगों ने लोकतंत्र की महिमा का गान किया। वरिष्ठों, विशेषज्ञों एवं विद्वानों ने इस पर अनेक परिचर्चाएँ कीं। इन परिचर्चाओं में मुद्दा यह भी रहा कि लोकतंत्र की प्राचीनता के दर्शन कहाँ किए जा सकते हैं। रूसो के सिद्धांत, ब्रिटेन व अमेरिका के लोकतंत्र की बातें करने के साथ अपने भारत देश में एक गाँव ऐसा है, जहाँ लोकतंत्र की प्राचीन व्यवस्था का अनुभव किया जा सकता है।

यह गाँव है—मलाणा, जो हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले में है। यहाँ लोकतंत्र के प्राचीनस्वरूप के सौंदर्य को सहजता से देखा जा सकता है। अनेक विशेषज्ञों ने इसे प्राचीन लोकतंत्र मानते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था की धरोहर के रूप में स्वीकार किया है। दुर्गम क्षेत्र में बसे इस गाँव में प्रत्येक तीन वर्ष के अंतराल पर ज्येष्ठांग (उच्च सदन) एवं कनिष्ठांग (निम्न सदन) के चुनाव होते हैं। यहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था कुछ अर्थों में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक व्यवस्था से विशिष्ट है। जिस 'राइट टू रिकॉल', यानी वापस बुलाने के अधिकार की हम समाचार माध्यमों में चर्चाएँ सुनते हैं, वह यहाँ पर लागू है। यहाँ पर ठीक से कार्य न होने पर चयनित सदस्यों को निर्धारित अवधि से पहले ही हटाया जा सकता है।

मलाणा गाँव की लोकतांत्रिक प्रणाली में अनेक विद्वानों ने अपनी अभिरुचि दिखाई है। समुद्रतल से लगभग १२ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित कुल्लू जिले के इस गाँव की संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था निश्चित ही सबसे पुरानी व अच्छी है। यहाँ पर यह व्यवस्था तब भी थी, जब देश गुलाम था। जब पूरा देश अँगरेजों अथवा उनके द्वारा पोषित, संरक्षित राजवंशों के शासन के अंतर्गत रह रहा था, तब भी यह गाँव अपने संसदीय लोकतंत्र का सौंदर्य बिखेरकर सभी को आश्चर्यचकित कर रहा था। अँगरेज ही क्यों, यहाँ की यह व्यवस्था तो उनसे भी पहले की है। इस व्यवस्था में अपनी राष्ट्रीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के राज्यसभा व लोकसभा की भाँति ज्येष्ठांग व कनिष्ठांग हैं। प्रत्येक तीन वर्षों के बाद इन दोनों सदनों के चुनाव होते हैं।

गाँव में प्रचलित व प्रतिष्ठित धार्मिक मान्यताओं के अनुसार ये चुनाव गाँव के देवता जमदग्नि ऋषि के आदेशानुसार कराए जाते हैं। इस अतिप्राचीन संसदीय लोकतंत्र के ऊपरी सदन के सदस्यों की संख्या ११ है। इनमें से ८ का चुनाव होता है और तीन को मनोनीत किया जाता है। मनोनीत किए जाने वाले सदस्यों में कर्मिष्ठ, पुजारी व गुरु होते हैं। ये सभी सदस्य स्थायी होते हैं। गाँव की परंपरा व प्रचलन के अनुसार इनका चुनाव देवता स्वयं करते हैं। जिन आठ सदस्यों को चुना जाता है, उनका चुनाव आम सहमति से होता है। जिन सदस्यों का चुनाव होता है, उन्हें भी यह जानकारी नहीं रहती कि उन्हें चुना जा रहा है।

निचले सदन के सदस्यों के चुनाव की अलग व्यवस्था है। इसके लिए गाँव में सदियों से रहने वाले खानदानों में से दो-दो सदस्य लिए जाते हैं। गाँव में मूलत: डरानी, पलचानी, नागवानी और धमयानी खानदानों के आवास हैं। निचले सदन के लिए भी आठ सदस्यों का चयन होता है। यह चयन अलग-अलग खानदानों के सौ-सौ परिवारों में से किया जाता है। एक खानदान के सौ परिवारों में से केवल दो सदस्यों को निचले सदन में लिया जाता है। इस सदन में गाँव के धाराबेहड़ और साराबेहड़ सभी परिवारों के मुखिया होते हैं। मुखिया न होने पर परिवार के वयस्क को सदस्य बनाया जाता है।

मलाणा गाँव के बुजुर्ग मानते हैं कि मलाणा के ज्येष्ठांग के सदस्यों का चयन भी तीन वर्ष के लिए किया जाता है, लेकिन काम ठीक ढंग से न करने पर इन्हें दो साल बाद हटाया जा सकता है। इस संबंध में विशेष बात

यह है कि मलाणा गाँव में आज भी गाँववासियों के अपने ही कानून चलते हैं। गाँव के लोग जमलू देवता को ही अपना शासक मानते हैं। ग्यारह सदस्यों पर आधारित परिषद् के सदस्य स्वयं को जमलू देवता का प्रतिनिधि मानते हैं। गाँव में किसी तरह के विवाद व अन्य किसी महत्त्वपूर्ण मसले पर चर्चा के लिए परिषद् की बैठक बुलाई जाती है। यह बैठक गाँव के बीचोबीच बने पत्थरों के चबूतरे पर होती है। गाँववासी परिषद् के फैसलों का सम्मान करते हैं और उन्हें मानते हैं। यहाँ सभी प्रकार के निर्णय बहुमत से लिए जाते हैं।

इतिहासकारों ने भी इस गाँव पर काफी खोज-बीन की है। उनके शोध निष्कर्ष, अनुसंधान व अन्वेषण मत कई हैं। संक्षेप में कहें तो इस गाँव के विषय में इतिहासवेत्ताओं में पर्याप्त मतभिन्नता है। कई इतिहासकार मलाणावासियों को यूनानियों का वंशज मानते हैं। उनके अनुसार, मलाणा गाँव हिमालय का एथेंस है। इन इतिहासकारों का मानना है कि विश्वविजेता बनने का सपना चूर-चूर होने के बाद सिकंदर वापस यूनान की ओर जाने लगा तो उसके कुछ सैनिक मलाणा में रुक गए। इन इतिहासकारों का यह भी कहना है कि इन सैनिकों को हिमालय की दिव्यता ने आकर्षित किया। ये सैनिक युद्ध, रक्तपात से थक और ऊब चुके थे। इन्हें हिमालय के आध्यात्मिक सौंदर्य ने भरपूर आकर्षित किया और वे यहीं के होकर रह गए।

इनमें से कुछ इतिहासकार मलाणावासियों को इंडो-आर्यन मानते हैं। कुछ अन्य इतिहासकार इस बारे में एक इतिवृत्त का उल्लेख करते हैं। इनका कहना है कि एक बार हिंदुस्तान के शहंशाह अकबर को किसी गंभीर रोग ने परेशान कर दिया। उसने इसकी चिकित्सा के अनेक उपाय किए, परंतु उसे इन सबसे कोई लाभ न हुआ। जो भी चिकित्सापद्धतियाँ उस समय पर उपलब्ध थीं, उन सभी के विशेषज्ञ बुलाए गए—हकीम, वैद्य, जर्राह सभी अपने-अपने प्रयत्न करके हार गए। इस प्रक्रिया में कुछ गुणी ओझा व तांत्रिक भी आए, पर इनमें से किसी को भी सफलता न मिली। शहंशाह अकबर भी इतने दिनों में अपनी बीमारी से निराश हो चुके थे। अपनी इस निराशा की चर्चा उन्होंने अपने मित्र व सेनापति अब्दुल रहीम खानखाना से की।

रहीम भक्त थे, उनमें ईश्वर के प्रति अटूट निष्ठा थी। उन्होंने अकबर की बात सुनकर कहा—"जहाँपनाह! मैंने सुना है हिमालय की औषधियाँ और वहाँ के ऋषि सभी तरह के चमत्कार करने में सक्षम हैं। इसकी अधिक जानकारी तो राजा टोडरमल ही दे सकेंगे; क्योंकि वह इस देश की संस्कृति व हिमालय की महिमा से अधिक परिचित हैं।" अकबर ने टोडरमल को बुलाया। उन्होंने रहीम की बातों से सहमति जताई। इसी के फलस्वरूप बादशाह अकबर का रहीम व टोडरमल के साथ हिमालय के इस क्षेत्र अर्थात मलाणा गाँव में आना हुआ। मलाणावासियों ने सचमुच अपनी चिकित्सा से अकबर को ठीक कर दिया। इसे मलाणावासियों की चिकित्सा का चमत्कार कहें या फिर हिमालय की औषधियों की महिमा; बादशाह अकबर पूर्णतया स्वस्थ हो गए।

स्वस्थ होने के बाद अकबर ने मलाणावासियों को आजाद कर दिया। प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने इन गाँववासियों को अपने ढंग के शासन की आजादी दे दी। तब से यहाँ पर इस गाँव में अपने कानून चल रहे हैं। इस कथा के अलावा मलाणा गाँव के बारे में और भी कथाएँ प्रचलित हैं। इनका सच-झूठ तो विशेषज्ञ ही जानें, परंतु एक बात तो सत्य है कि मलाणा में संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था सदियों से चल रही है। यह विश्व के सबसे प्राचीन संसदीय लोकतंत्र का उदाहरण है। कहते हैं—"देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू भी यहाँ के संसदीय लोकतंत्र से प्रेरित थे। उन्होंने देश की संसदीय प्रणाली के निर्माण में ब्रिटेन व अमेरिका के साथ मलाणा गाँव से भी प्रेरणा प्राप्त की थी।" विश्व के इस प्राचीन लोकतंत्र का चुनाव अभी पिछली जून में संपन्न हुआ है। ❀

यज्ञात्प्राण स्थितिर्मते जपान्मंत्रस्य जाग्रतिः।
अति प्रकाशवांश्चैव, मंत्रो भवति लेखनात्॥

यज्ञ से मंत्र में प्राण आते हैं, जप से मंत्र जाग्रत होता है और लिखने से मंत्र की आत्मा प्रकाशित होती है।

भारतीय आकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र

दीपावली के प्रकाश पर्व पर धरती पर अनगिनत दीये जगमगाएँगे और आकाश में असंख्य नक्षत्र अपनी ज्योति बिखेरेंगे। भारत देश की समूची धरती, संपूर्ण आकाश इन दीपों व नक्षत्रों से प्रकाशित होंगे। इन दीपों व नक्षत्रों के साथ अपने देश की धरती पर कुछ ऐसे दीप व कुछ ऐसे नक्षत्र भी हैं, जिन्होंने अपनी मौलिक शोध व अनूठे अनुसंधान से देश को प्रकाश से परिपूर्ण किया है। इनमें से कुछ की चर्चा विश्व की सुप्रतिष्ठित पत्रिका 'फोर्ब्स' ने की है। कुछ को भारत गणराज्य के माननीय राष्ट्रपति जी ने सम्मानित व प्रोत्साहित किया है। राष्ट्रपति भवन में २० दिन गुजारने वाले देश के पाँच प्रतिभाशाली इनोवेटर्स अपने अनूठे आविष्कारों का सिलसिला जारी रखकर देश की सेवा करना चाहते हैं। अभी पिछली १ जुलाई को राष्ट्रपति जी के बुलावे पर रायसेना हिल्स पहुँचे इन सभी मौलिक अन्वेषकों ने दैनिक प्रयोग के विभिन्न क्षेत्रों में तकनीक के जरिए नए कारनामे किए हैं।

इनमें से एक नाम है—सोलहवर्षीय टेनिथ आदित्य का। इन्होंने बिना किसी रसायन के केले के पत्तों को लंबे समय तक सुरक्षित रखने की तकनीक खोजी है। इस तकनीक से बिना पत्तों का प्राकृतिक रंग बदले उनके तापमान व वजन सहन करने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इनके द्वारा खोजी गई तकनीक से केले के पत्तों को दो साल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इनमें से दूसरा नाम इक्कीस साल की मनीषा मोहन का है। देश में बढ़ती हुई बलात्कार की घटनाओं से चिंतित मनीषा ने एक अद्‌भुत ढंग के अंत:वस्त्र की खोज की है। यह न केवल हमलावर को बिजली का झटका देगा, बल्कि जी० पी० एस० के माध्यम से परिवार व पुलिस वालों को संदेश भी पहुँचाएगा। इसके सेंसर के एक्टिव होते ही इसके द्वारा पाँच मिनट की रिकार्डिंग भी संभव है।

इस क्रम में अगला नाम धर्मवीर कंबोज का है। इन्होंने बहुउद्‌देश्यीय प्रोसेसिंग मशीन को ईजाद किया है। इसके माध्यम से एलोवेरा, आँवला, जामुन आदि का जूस निकालना और अन्य उत्पादों के लिए उसका प्रसंस्करण संभव है। गुरुमेल सिंह ढोंसी भी ऐसे ही एक इनोवेटर हैं। इन्होंने पेड़ों की छँटाई करने वाले विशेष ट्री प्रूनर का निर्माण किया है। इसके द्वारा २० फीट की ऊँचाई तक के पेड़ों की छँटाई करनी संभव हो सकेगी। ऐसे ही हैं—एम० बी० अविनाश, जिन्होंने स्वयं को साफ करने की क्षमता से युक्त एक आणविक पदार्थ अन्वेषित किया है। इनकी चर्चा करते हुए राष्ट्रपति जी के प्रेस सचिव वेणु राजामणि ने बताया—यों तो प्रत्येक आविष्कार का अपना महत्त्व है, लेकिन रोजमर्रा की जिंदगी में काम आने वाले अनुसंधान जनसामान्य के लिए स्वत: ही महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं।

इनके साथ कुछ और लोग भी महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके आविष्कारों की चर्चा विश्व की प्रतिष्ठित पत्रिका फोर्ब्स में हुई। इन्होंने किताबी ज्ञान और डिग्री के बजाय अपने अनुभव से आम आदमी की तकलीफों को समझा और उन तकलीफों को दूर करने में जुट गए। निश्चित ही ये भारतीय गगन के प्रकाशमान नक्षत्र हैं। खास बात यह है कि इस सूची में शामिल तीन के नाम मनसुखभाई हैं। मनसुखभाई जगनी, मनसुखभाई पटेल, मनसुखभाई प्रजापति। इनके अलावा हैं—अंशु गुप्ता, रामा जी खोबरागढ़े, मदन लाल कुमावत, चिंताकिंडी मल्लेशाम। इन्होंने ऐसे सवालों के जवाब ढूँढ़े हैं, जो हमारे लिए प्राय: मजाक होते हैं। जैसे हममें से ज्यादातर लोग मटके को 'गरीबों का फ्रिज' कहते हैं। बस, इसी शब्द को सिद्ध करते हुए बिना बिजली का फ्रिज सामने आया। इसी के साथ पत्नी को तवे पर रोटी सेकते हुए होने वाली परेशानी से फ्राइंगपैन आया। गाँव में यदा-कदा अमीर लोग गरीबों को ताना मारते हैं। ट्रैक्टर नहीं है तो मोटरसाइकिल से खेत जोत लो। बस, इसी से प्रेरणा ली और बना लिया मोटरसाइकिल वाला ट्रैक्टर।

चलिए सिलसिलेवार इन दो उपलब्धियों की चर्चा करते हैं। राजकीय गुजरात के मनसुखभाई प्रजापति पेशे से कुम्हार है। पीढ़ियों से उनका परिवार, मिट्‌टी के बरतन बनाता रहा है। सन् २००१ में गुजरात में आए

भूकंप में हजारों लोगों के मटके नष्ट हो गए। उन्होंने लोगों को यह कहते हुए सुना कि इस भूकंप ने गरीबों का फ्रिज छीन लिया। बस, यहीं से उन्होंने काम शुरू किया और 'मिट्टी कूल' नाम से बिना बिजली का फ्रिज तैयार किया। सन् २००१ से २००५ तक इस पर लगातार प्रयोग करते रहे। सन् २००५ में उन्होंने अपनी पत्नी को नॉन-स्टिक तवे के लिए परेशान होते हुए देखा। यह महँगा था, इसलिए वह खरीद नहीं पा रही थी। इसे देखते हुए प्रजापति ने मिट्टी के पुराने तवे पर कुछ प्रयोग किए और नान-स्टिक तवा तैयार कर दिया, वह भी मात्र सौ रुपये में।

इस प्रयास में मनसुखभाई पटेल भी कुछ कम नहीं हैं। कपास के पूरे बंद और अधखुले फल में से कपास निकालना बेहद समय लेने वाला और थका देने वाला काम है। दसवीं तक पढ़े पटेल ने इसे दूर करने के लिए कपास की छँटाई मशीन तैयार की। वह देश के पहले ऐसे ग्रामीण आविष्कारक बने, जिन्हें अमेरिकी पेटेंट भी हासिल हुआ। इसके अलावा उन्होंने कपास की उन्नत तकनीक भी विकसित की, इससे किसानों का मुनाफा बढ़ा। इतिहास बताता है कि कपास ने हमेशा ही भारत को सम्मान दिलाया है। जब सिकंदर की फौज यहाँ आई तो सिंधुघाटी की सभ्यता व कपास की खेती देखकर उन्होंने दाँतों तले उँगली दबा ली। वे आश्चर्यचकित थे कि जो ऊन वो भेड़ों से हासिल करते हैं, हिंदुस्तानियों ने उसे खेतों में उगा रखा है।

खेत जोतने की बात आती है, तो दो ही दृश्य उभरते हैं। बैलों की जोड़ी लेकर पसीना बहाता किसान या ट्रैक्टर पर बैठा समृद्ध काश्तकार। इस दृश्य को नजरों से हटाने का काम किया है, गुजरात के ही मनसुखभाई जगनी ने। जगनी ने मोटरसाइकिल खेत जोतने का यंत्र तैयार किया है। यह बिलकुल ट्रैक्टर की तरह काम करता है। यह दो लीटर ईंधन में आधे घंटे में करीब एक एकड़ जमीन जोत सकता है। जब विदेशों में इसे दिखाया गया तो करीब ३१८ डालर के इस ट्रैक्टर को सबने सराहा। चार साल के लगातार परीक्षण के बाद इस आविष्कार को नाम दिया गया है—बुलेट हल।

अनुसंधान के इसी प्रयास में आंध्रप्रदेश के चिंता किंडी मल्लेशाम—अपनी उँगलियों को दरद देकर लोगों को सुंदर कपड़ा देने वाले बुनकरों की जिंदगी को खूबसूरत बनाने का काम इन्होंने किया है। उनके द्वारा तैयार 'लक्ष्मी आसू मशीन' ने बुनकरों को लूम की खट-खट से मुक्ति दिलाई है। एक साड़ी तैयार करने में बुनकरों को हजारों बार हाथ घुमाना पड़ता है; जबकि इस नई मशीन में उन्हें सिर्फ धागे एडजस्ट करने होते हैं। पहले बुनकर सारा दिन काम करके सिर्फ एक साड़ी का मटेरियल तैयार कर पाते थे, अब इस मशीन की सहायता से वो एक दिन में छह साड़ी तैयार कर सकते हैं।

खेती, कपड़े के उपकरण बने हैं तो भला खाने में कैसे पीछे रहा जा सकता है। महाराष्ट्र के रामाजी खोबरागढ़े ने चावल की एक नई प्रजाति विकसित की है। बिना किसी वैज्ञानिक सहायता के रामाजी ने इस पर काम किया। चावल की इस किस्म को एचएमटी नाम दिया गया है। इस बीज से करीब ८० फीसदी फसल ज्यादा मिल रही है। साथ ही इसका दाना बारीक व खुशबूदार है। देशभर के किसान इस चावल-क्रांति का लाभ ले रहे हैं। मदनलाल कुमावत ने भी कुछ इसी तरह गाँव की

असंतोष ही परम दुःख है और संतोष ही परम सुख है। इसलिए सुख चाहने वाले पुरुष को भगवान द्वारा दी हुई प्रत्येक परिस्थिति में सदा संतुष्ट रहना चाहिए।

जिंदगी को उन्नत बनाने के लिए सिंचाई की नई तकनीक खोजी है। अंशू गुप्ता के प्रयास ने भी ग्रामीण जिंदगी को अपेक्षाकृत अधिक सुखकर बनाया है।

भारत देश की इन प्रतिभाओं ने विश्व को यह जताने की कोशिश की है कि भारतवासी किस तरह इक्कीसवीं सदी में अपने उज्ज्वल भविष्य को सँवारने में लगे हैं। उन्होंने अपने प्रयास से यह भी जता दिया है कि अनुसंधान सिर्फ विदेशी यंत्रों-उपकरणों से सजी हुई महँगी प्रयोगशालाओं में नहीं होते, इन्हें उत्कृष्ट प्रतिभाएँ कहीं भी-कभी भी संपन्न कर सकती हैं। भारत तो सदा से ऋषियों का देश रहा है। ऋषि शहरी जीवन से दूर बिना लाभ-हानि की चिंता किए समाज में ज्ञान-विस्तार के लिए समाधि लगाए रहते थे। ठीक वैसे ही इन प्रतिभाओं ने अपने नवोन्वेषण से भारतीय समाज को वरदान देने की कोशिश की है। सचमुच ही ये भारत की धरती के प्रकाशित दीप व भारतीय गगन के ज्योतिर्मय नक्षत्र हैं। ❀

भारतीय संस्कृति के प्रसार में संगीत की भूमिका

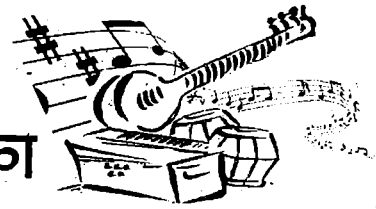

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग में शोधार्थी शिवनारायण प्रसाद द्वारा सन् २००९ में भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में संगीत विधा के महत्त्व का प्रतिपादन करने वाला एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य पूरा किया गया। यह एक सैद्धांतिक और विवेचनात्मक अध्ययन है। इस शोध-अध्ययन का विषय है—**भारतीय संस्कृति के प्रसार में संगीत की भूमिका (विशेष संदर्भः पं० श्रीराम शर्मा आचार्य)**। यह शोधकार्य विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के संरक्षण, विशेष मार्गदर्शन एवं प्रो० (डॉ०) संध्या रानी के निर्देशन में पूर्ण किया गया। इस शोध-अध्ययन में कुल आठ अध्याय हैं।

प्रथम अध्याय है—विषय प्रवेश। इस अध्याय के अंतर्गत संस्कृति एवं संगीत का अर्थ, परिचय, परिभाषा, स्वरूप आदि को समझाते हुए दोनों के संबंध की विस्तृत चर्चा की गई है। इसके साथ ही पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का जीवनवृत्त एवं उनकी सांस्कृतिक अभिरुचि को बताया गया है।

'सा प्रथमा संस्कृतिःविश्ववारा' (यजु० ७/१४) के अनुसार, हमारी संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ परिष्कृत अथवा उत्तम प्रकार से किया गया कार्य है। आचार्य पं० श्रीराम शर्मा के अनुसार, संस्कृति मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने का विज्ञान और विधान हैं। संस्कृति के समानांतर संगीत विधा भी अति प्राचीन है। आर्ष वाङ्मय में सर्वप्रथम नाद रूप में इसका उल्लेख हुआ है। सामवेद तो संगीत का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

द्वितीय अध्याय है—युग निर्माण के सांस्कृतिक आंदोलन में संगीत की भूमिका। इस अध्याय में आचार्य जी द्वारा प्रवर्तित युग निर्माण आंदोलन की चर्चा करते हुए इसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। इस आंदोलन के सप्तसूत्री कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने में संगीत का योगदान तथा आचार्य जी के सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आंदोलनों के परिप्रेक्ष्य में संगीत की भूमिका स्पष्ट करते हुए उनके काव्य-गीतों पर प्रकाश डाला गया है।

युग निर्माण आंदोलन के कार्यक्रमों को गतिशील बनाए रखने के लिए आचार्य जी ने सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को साधन बनाया। सद्भाव और सत्कर्म की प्रवृत्तियों को समाज में विकसित करने के लिए उन्होंने प्रतीक रूप में गायत्री और यज्ञ को माध्यम बनाया। संस्कारों की ओर प्रेरित होने तथा सद्विचारों से उद्वेलित होने वाले गीतों की प्रस्तुति आचार्य जी के मिशन में प्रत्येक आंदोलन एवं कार्यक्रमों का अभिन्न हिस्सा है। आचार्य जी के अभियानों में संगीत की पृष्ठभूमि को तैयार करने वाला एक महत्त्वपूर्ण पहलू भी रहा है—वह यह कि आचार्य जी ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की भूमिका में श्रीराम मत्त के नाम से अनेक क्रांतिकारी गीतों की रचना की। दैनिक सैनिक में 'मत्त प्रलाप' के नाम से छपे इन गीतों में आचार्य जी ने काव्य संगीत द्वारा जनक्रांति का स्वर मुखर बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अध्ययन में ऐसे ही कुछ गीतों का संकलन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय है—गायत्री तपोभूमि के क्रियाकलापों में संगीत। इस अध्याय में गायत्री तपोभूमि की स्थापना एवं उद्देश्य तथा वहाँ के विभिन्न क्रियाकलापों में संगीत के महत्त्व की विवेचना की गई है। इसके साथ ही माता भगवती देवी शर्मा के भाव-गायन तथा मथुरा स्वावलंबन विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा गाए जाने वाले संगीत की विशेषताओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय है—शांतिकुंज के विभिन्न कार्यक्रमों एवं शिक्षण में संगीत। इस अध्याय के अंतर्गत युगतीर्थ शांतिकुंज का परिचय, दैनिक क्रियाकलाप, प्रशिक्षण सत्र एवं पर्व-त्योहारों का विवेचन करते हुए इनमें संगीत की भूमिका एवं महत्त्व को दरसाया गया है। साथ ही जनजागरण हेतु संगीत का निर्माण, आश्वमेधिक शैली में संगीत का प्रयोग, संकीर्तन द्वारा ध्यानपद्धतियों का विकास जैसे संगीत के नूतन आयामों का इस अध्याय में विस्तृत विवेचन है।

आचार्य जी ने वर्ष १९७१ में हरिद्वार के सप्तसरोवर क्षेत्र में युगतीर्थ के रूप में शांतिकुंज आश्रम की स्थापना की। यह 'इक्कीसवीं सदी की ज्ञान गंगोत्तरी' के रूप में पहचाना जाता है। यहाँ का संपूर्ण वातावरण संगीतमय है। प्रात: ब्राह्ममुहूर्त में जागरण से लेकर रात्रि तक की दिनचर्या में संगीत की सुमधुर स्वरलहरियाँ यहाँ सदैव गुंजायमान रहती हैं। प्रात: की ध्यान-साधना, यज्ञ, दोपहर की संजीवनी-साधना तथा रात्रिकालीन शयन-प्रार्थना आदि सब संगीतप्रधान हैं। नादयोग-साधना तो इस आश्रम परिसर का पूर्णत: संगीतयुक्त आध्यात्मिक प्रयोग है।

शांतिकुंज की दिनचर्या के अतिरिक्त विभिन्न प्रशिक्षण सत्रों में भी संगीत का गहरा संबंध है। प्रमुख रूप से नौदिवसीय संजीवनी-साधना सत्र, एकमासीय युगशिल्पी सत्र, त्रैमासिक संगीत-साधना सत्र, परिव्राजक शिक्षण एवं मौन-साधना सत्र आदि में युगसंगीत अनिवार्य रूप से संबद्ध है। इन विभिन्न सत्रों में संगीत द्वारा प्राण व प्रेरणा भरने वाले हजारों गीतों की रचना शांतिकुंज के मनीषियों एवं संगीतज्ञों द्वारा की गई है। इसके साथ ही यहाँ आने वाले प्रशिक्षुओं के लिए भी संगीत प्रशिक्षण की व्यवस्था है। युगवाद्य के रूप में ढपली संगीत सभी के लिए आकर्षित करने वाला है। अध्ययन में उक्त सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

पंचम अध्याय है—ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान में संगीत की वैज्ञानिकता। इस अध्याय में ब्रह्मवर्चस का परिचय, शब्दब्रह्म-नादब्रह्म का निरूपण, सृष्टि-उत्पत्ति में नाद तथा नादयोग के स्वरूप की विस्तारपूर्वक विवेचना की गई है। इसके साथ ही स्वरों के उत्पत्ति स्थान एवं नामकरण का विज्ञान, संगीत का रोगों पर प्रभाव, संगीत के मनोवैज्ञानिक प्रभाव आदि महत्त्वपूर्ण पक्षों की व्याख्या की गई है।

शांतिकुंज से थोड़ी ही दूरी पर गंगा किनारे स्थापित ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का विश्व प्रसिद्ध केंद्र है। सन् १९७९ में आचार्य जी द्वारा इसकी स्थापना की गई थी। यहाँ योग, धर्म, अध्यात्म और तप-साधना के समग्र व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक अध्ययनकार्य होता है। साथ ही यज्ञ, मंत्र एवं संगीत के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का भी अध्ययन किया जाता है। यही नहीं, ब्रह्मवर्चस के वैज्ञानिक शोध प्रयोगों में आधुनिक उपकरणों द्वारा यह भी देखा जाता है कि संगीत की लहरों का शरीर, मन और भाव संस्थान पर क्या प्रभाव पड़ता है। सामूहिकता की दृष्टि से भी सहगान-संकीर्तन द्वारा वातावरण में सौम्यता, सात्त्विकता और शांति उत्पन्न होने को प्रमाणित किया गया है। आचार्य जी ने अपने मंत्र प्रयोगों में शब्दब्रह्म-नादब्रह्म का निरूपण किया है।

आचार्य जी के अनुसार, स्वर-तरंगें संगीत का रूप लेकर जीवनदायिनी सामर्थ्य उत्पन्न करती हैं। उन्होंने शांतिकुंज की संगीत विधा में कुछ ऐसी स्वरलहरियाँ, जो कि विभिन्न रागों पर आधृत हैं, की रिकॉर्डिंग कर संगीत चिकित्सा के रूप में प्रयोग किए। इन्हीं में गायत्री मंत्र का विभिन्न रागों में गायन, महामृत्युंजय मंत्र का रागसम्मत गायन ऐसे ही प्रयोग हैं, जिनका उपयोग षट्चक्र जागरण, ध्यान-साधना एवं रोगोपचार में सफलतापूर्वक किया गया है। इसके साथ ही ब्रह्मवर्चस में संपन्न होने वाले संगीत-प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि संगीत से जीवनीशक्ति, संकल्पशक्ति और आत्मबल में अप्रत्याशित वृद्धि होती है।

षष्ठ अध्याय है—आचार्य जी द्वारा लिखित अखण्ड ज्योति में संगीत। इस अध्याय में आचार्य जी द्वारा लिखित संगीत के महत्त्व एवं उपयोगिता की विवेचना की गई है। अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका में आचार्य जी ने अपने लेखों द्वारा संगीत के आध्यात्मिक, प्रतीकात्मक और व्यावहारिक पहलुओं को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही अखण्ड ज्योति में छपने वाले काव्य का सृजन भी गीत के रूप में ही किया गया है। अखण्ड ज्योति के संगीत का पहला स्वर था—

सुधा बीज बोने से पहले,
कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकुट,
विश्वहित मानव को जीना होगा॥

इसके साथ ही आचार्य जी ने अखण्ड ज्योति का परिचय काव्यात्मक रूप में कुछ इस प्रकार से दिया—

संदेश नहीं मैं स्वर्गलोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

अखण्ड ज्योति में रोचक गीत-संगीत के साथ-साथ विभिन्न लेखों द्वारा संगीत के गूढ़ पक्षों का अनावरण भी किया गया है। इसमें बताया गया है कि संगीत का मूलस्वरूप आध्यात्मिक है और यह समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। संगीत में अपरिमित शक्ति सामर्थ्य है। सामान्य जीवन में मनुष्य के आत्मिक विकास का यह सर्वसुलभ और श्रेष्ठ मार्ग है।

सप्तम अध्याय है—संस्कृति के विश्वव्यापी प्रसार में संगीत की भूमिका। इसके अंतर्गत भारतीय संस्कृति के विश्वव्यापी विस्तार और इसमें संगीत की भूमिका का विवेचन किया गया है। साथ ही बताया गया है कि भारतीय संगीत का विदेशी लेखकों, कवियों एवं संगीतकारों पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा विदेशों के सांस्कृतिक उत्थान में प्रज्ञासंगीत की क्या भूमिका है?

आचार्यश्री के अभियान में सांस्कृतिक चेतना का उत्थान एक अनिवार्य पहलू रहा है। इस उद्देश्य से समय-समय पर देश-विदेश में टोलियाँ जाती रही हैं। इनके प्रचार अभियान में प्रज्ञा संगीत के माध्यम से प्रेरक संदेश देने और सांस्कृतिक जागरण करने की अनूठी प्रक्रिया जुड़ी है। शांतिकुंज के युगगायकों द्वारा गाया जाने वाला प्रज्ञा संगीत युग के अनुरूप परिष्कृत और प्रेरक है, अतः यह स्वाभाविक रूप से सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या द्वारा अनेक आयोजन विदेशी धरती पर संपन्न हुए हैं और उन सभी में प्रज्ञा संगीत का गायक दल साथ रहा है। उन्होंने संगीत के माध्यम से विश्व संस्कृति को मूल्यों का शिक्षण और जीवन जीना सिखाने की नई विधा का पोषण किया है और कर रहे हैं।

अष्टम अध्याय है—उपसंहार। इसमें सभी अध्यायों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करते हुए शोध-अध्ययन का निष्कर्ष एवं प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है। संगीत हमारे जीवन, धर्म, संस्कृति और वैभव की अमूल्य विरासत है। आधुनिकता के प्रभाव में इसका मौलिक स्वरूप एवं लक्ष्य अनेक भ्रांतियों से ग्रस्त दिखाई देता है। ऐसे में भारतीय संगीत पर आधारित यह शोध-अध्ययन निश्चित रूप से संगीत को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला है। साथ ही प्रज्ञा संगीत के रूप में भारतीय संगीत विधाओं में एक नई और युगानुरूप संगीत विधा का परिचय भी कराता है। ❀

एक व्यक्ति अपनी जिज्ञासा लेकर एक संत के पास पहुँचा और उनसे आग्रह करने लगा कि वे यह बताएँ कि सच्चे आनंद की प्राप्ति कैसे हो सकती है? संत बोले—"बेटा! इन दिनों मैं थोड़ा व्यस्त हूँ। तुम ऐसा करना कि तीन माह बाद मुझसे मिलने के लिए आना, तब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे पाऊँगा। तब तक तुम ऐसा करना कि एकांत-सेवन करना, स्वाध्याय करना और परमात्मा के विषय में चिंतन-मनन करना।"

युवक के मन में अभीप्सा तीव्र थी, सो उसने संत के निर्देशों का अक्षरशः पालन किया। ऐसे ही तीन माह निकल गए। समय गुजरने के उपरांत वह संत से मिलने पहुँचा तो उनके चरण पकड़कर रोने लगा और बोला—"महाराज! आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं जब से एकांतवासी हुआ हूँ, स्वाध्याय में निरत हुआ हूँ और प्रभु की भक्ति में निमग्न हुआ हूँ, तब से सच्चे आनंद के सागर में ही गोते लगा रहा हूँ। अब तो भगवान के सिवाय कुछ और दिखाई नहीं देता एवं इसके अतिरिक्त आनंद का और कोई स्रोत इस संसार में है भी नहीं।" संत मुस्कराकर बोले—"प्रश्न का उत्तर शब्दों से देना तो आसान है, पर जो ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, वही सच्चे आनंद का स्रोत है।"

परोक्ष भी सच है

जिस कालखंड में पश्चिमी देशों में भौतिकवाद आँधी-तूफान की तरह फैल रहा था, उस अवधि में लाखों ऐसे व्यक्तियों को 'विच' या डाइन, जादूगर आदि नामों से संबोधित किया जाता था, जिनमें अतींद्रिय क्षमताएँ, साइकिक पावर आदि शक्तियों का विकास यत्किंचित् मात्र में हो गया था, लोग उन्हें अभौतिक तत्त्वों से संबंधित मानकर दंडित करते थे। अनेक व्यक्तियों को राह चलते मार दिया जाता था। विज्ञान के युग में भी अभौतिक तत्त्वों का होना असंभावित माना जाना स्वाभाविक लग रहा था। धार्मिक विग्रहों ने जिस तरह अविवेकतापूर्ण मानव संहार किया था, उसकी पुनरावृत्ति हो रही थी। ऐसे विषमकाल में आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरणों के साथ एक मसीहा सामने आया, जिसने यह जानने के लिए कि अभौतिक सामर्थ्य या अतींद्रिय क्षमताओं से संबंधित घटनाएँ सत्य हैं अथवा भ्रांति है, अपना समूचा जीवन इसी सत्यान्वेषण में लगा दिया। उस व्यक्ति का नाम था—हेरी प्राइस।

मूर्द्धन्य मनोवेत्ता हेरी प्राइस लंदन के नेशनल लेबोरेटरी ऑफ साइकीकल रिसर्च-केनींगस्टन के संस्थापक सदस्यों में अग्रणी माने जाते हैं। उन्होंने एक प्रयोगशाला बनाई थी, जिसमें हर प्रकार के छद्म को उद्घाटित करने हेतु अनेक विधियंत्र लगे थे। इस अनुसंधानशाला को ख्याति तब मिली, जब उन्होंने इलीओर जुगन नामक एक तेरहवर्षीय लड़की का परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि यह 'विच' अथवा डाइन का मामला नहीं है, वरन अतींद्रिय क्षमताओं के विकास की घटना है।

इलीओर जुगन को उसके गाँव के लोग इसलिए प्रताड़ित करते थे कि उसमें जन्म के बाद ही कुछ अद्भुत अतिभौतिक या अतींद्रिय क्षमताएँ जाग्रत हो गईं थीं। उत्पीड़न से बचाने के लिए उसे रूमानिया के एक शरणस्थल में रखा गया था। बाद में उसे आस्ट्रिया की काउन्टसे पास्लिको सरेवेकी ने गोद ले लिया था। उसने इलीओर के बारे में जनरल ऑफ अमेरिकन साइकोलॉजीकल सोसाइटी में एक लेख प्रकाशित कराया। इसे पढ़कर लंदन के 'नेशनल लेबोरेटरी ऑफ साइकीकल रिसर्च-केनींगस्टन' के संस्थापक हेरी प्राइस स्वयं विएना गए, ताकि उस लड़की का वैज्ञानिक परीक्षण किया जा सके। उन्होंने ख्यातलब्ध मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों की उपस्थिति में वैज्ञानिक संयंत्रों के माध्यम से सतर्कतापूर्ण उसकी अनेक प्रकार से जाँच कराई। देखा गया कि उस लड़की के अंगों पर ईसामसीह के अंगों पर पाए जाने वाले क्षत चिह्न उभर आते हैं। जिस समय यह चिह्न उभरते हैं, उस समय उसकी नाड़ी तीव्रगति से चलने लगती है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है और अतींद्रिय सामर्थ्य अपनी चरम अवस्था में उभरी हुई होती है।

इसी तरह का एक अन्य परीक्षण लंदन की स्टेला क्रेंशो नामक नर्स का हुआ था। हेरी प्राइस ने 'टेलीकाइनोस्कोप' नामक संयंत्र का आविष्कार किया था। बिजली से जुड़ने पर इसमें लाल रंग का बल्ब जलता था। स्टेला ने प्रथम परीक्षण में ही अपने मनोबल से मशीन को बिना स्पर्श किए एवं बिना विद्युत-प्रवाह के बल्ब को जला दिया था। इस तरह के प्रामाणिक वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धता एवं वैज्ञानिकों के अथक प्रयास ने कितनी ही निर्दोष महिलाओं की जान बचाई। इतना ही नहीं लोगों ने मनुष्य की अतींद्रिय सामर्थ्य को भी स्वीकार किया। हेरी प्राइस ने तो अपनी समूची जमा पूँजी इस तरह की प्रयोगशाला स्थापित करने में लगा दी और सत्रह हजार पुस्तकों का अपना जीवनभर का संग्रह लंदन विश्वविद्यालय को समर्पित कर दिया। ❀

ज्ञातव्य

डाकघर में बैगों की कमी, डाकवाहन की कमी, स्टॉफ की कमी आदि कारणों से पत्रिकाएँ पाठकों को विलंब से मिल रही हैं। व्यवस्था तंत्र पूरा प्रयास कर रहा है कि कठिनाइयाँ दूर हों। आशा है आगामी मासों में सुधार होगा। परिजनों को हो रही कठिनाई का हमें खेद है।

महान संभावनाओं का धनी मनुष्य

प्रकृति में, संसार में अगणित ऐसे रहस्य हैं। जिन्हें मनुष्य आज तक नहीं समझ पाया है। प्राचीनकालीन ऋषि-मुनियों, योगी-तपस्वियों को छोड़ दें, तो वह अपनी मानसिक एवं आत्मिक क्षमता को ही जब नहीं जान पाया है तो प्रकृति के रहस्यों को कैसे जान सकता है? उसे तो अपनी अतींद्रिय क्षमताओं, प्रतिभाओं, दिव्य गुणों आदि पर भी विश्वास नहीं है। विख्यात अमेरिकी उपन्यासकार अप्टन सिंक्लर ने अपनी कृति 'मेन्टल रेडियो' में कहा है कि अतींद्रिय क्षमताओं के बारे में कभी मैं भी विश्वास नहीं करता था, लेकिन एक घटना ने मुझे इस विषय पर सोचने को बाध्य कर दिया। कई वर्षों के निरंतर प्रयोगों और अनुसंधानों के पश्चात उन्होंने कहा—"मैं अब इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य के अंदर अतींद्रिय क्षमताओं के साथ हीं महान संभावनाएँ छिपी हुई हैं। अब मैं अपना शेष जीवन इसी की खोज में लगाऊँगा।"

'मिस्टीरियस नॉलेज' नामक अपनी कृति में लेखकद्वय फ्रांसिस किंग एवं जे० किंगस्टन ने कहा है कि विज्ञान की प्रमुख धाराओं ने आज गौरवप्रद विकास किया है,फिर भी कुछ घटनाएँ इतनी विलक्षणता लिए हुए होती हैं और जो चहुँ ओर फैली हुई दिखाई देती हैं, वे आज भी विज्ञान के बनाए हुए राजमार्ग को गंभीर चुनौती दे रही हैं। उनके अनुसार इस युग की आम मान्यता है कि अंधकार और अज्ञान में डूबे हुए आदिमवासी एवं प्राचीन सभ्यताएँ, केवल अंधश्रद्धा में डूबे हुए हैं और विज्ञान ने जो प्रकाश दिखाया है, उससे उसकी तुलना नहीं हो सकती, किंतु यह मान्यता अब धराशायी हो रही है। इतना ही नहीं, यह तथ्य भी उभरकर सामने आ रहा है कि इंद्रियजन्यज्ञान जिस पर विज्ञान गर्व कर रहा है, अतींद्रिय ज्ञान की तुलना में नगण्य-सा है और तथाकथित पिछड़े लोग, प्राचीन सभ्यताएँ और आदिम जातियों में प्रचलित गतिविधियाँ हास्यास्पद नहीं, वरन परामनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक सुसंगत हैं।

सुप्रसिद्ध लेखक जेइम्स वेलार्ड ने अपनी पुस्तक 'लॉस्ट वर्ल्ड ऑफ अफ्रीका' में बताया है कि प्राय: अफ्रीका में आदिम जातियाँ, जिन्हें हम पिछड़ा मानते हैं, परंतु देखा गया है कि वे अपनी अतींद्रिय क्षमताओं में सुसभ्य कहे जाने वाले लोगों से कहीं बहुत आगे हैं। वे अनागत को भी पढ़ने में समर्थ होते हैं। मन की निर्मलता, अंतरंग की निश्छलता एवं सतत अभ्यास से कोई भी व्यक्ति अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत कर सकता है और अतींद्रिय क्षमताओं का स्वामी बन सकता है।

एक उदारमना व्यक्ति ने अपनी संपदा परमार्थ प्रयोजनों के लिए दान दी और लोकसेवा के कार्यों में निरत रहने लगा। उसकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। इस परिवर्तन के लिए लोग उसकी भूरि-भूरि सराहना करते और बधाई देने आते। उत्तर में उदार व्यक्ति एक प्रश्न करता—"आपके झोले में कंकड़-पत्थर हों और अनायास कोई बहुमूल्य वस्तु मिले तो उन पत्थरों को फेंककर मूल्यवान वस्तु उसमें भरोगे या नहीं? लोग उत्तर में सिर हिला देते। उदारमना समझाता मैंने कोई त्याग नहीं किया, मात्र समझदारी का परिचय दिया है। जो व्यर्थ बटोर रखा था, वह बोझ बढ़ाता; अनर्थ सिखाता। अब उस जंजाल के फेंक देने पर मन:स्थिति परमार्थ करने जैसी बन गई और वे कार्य हो सके,जिनकी प्रशंसा आप सब करते हैं और मुझे संतोष पाने तथा भविष्य उज्ज्वल बनाने का अवसर मिलता है।

हृदय पर संयम से होता है, चित्त का ज्ञान

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग आंतरिक संरचना को परिभाषित करते हैं। जीवन केवल उतना नहीं है, जितना बाहरी तौर पर दिखाई देता है। शरीर की संरचना, इसकी गतिविधि, इससे प्रकट होने वाला व्यवहार जीवन का परिचय तो देता है, पर इसे संपूर्णता में परिभाषित नहीं करता। जीवन की यह बाहरी संरचना संपूर्णतया आंतरिक संरचना पर टिकी है। इसी आंतरिक संरचना को महर्षि पतंजलि चित्त कहकर निरूपित करते हैं। जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी गतिविधि का आधार यही है। चित्त में संचित कर्मराशि, इसका शुभ-अशुभ स्वरूप, इसका परिपाक हम सबकी जिंदगी के अच्छे-बुरे घटनाक्रमों का, यहाँ तक कि जीवन-मरण का कारण बनता है। यथार्थ में कहें तो महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के चारों अध्यायों के सभी १८५ सूत्रों में चित्त के ही सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म अंतर-प्रत्यंतर की प्रक्रिया, प्रयोग व परिणामों की विवेचना की है।

उन्होंने संपूर्ण योगदर्शन, समूची योगविद्या को चित्तवृत्तियों के निरोध के रूप में बताया है। चित्त की वृत्तियों की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ ही जीवन के विविध रूपों को प्रकट करती हैं। शुभ-अशुभ के रूप में, सुख-दुःख के रूप में, ज्ञान-अज्ञान के रूप में यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है। हाँ, जब व्यक्ति योग के अनुशासन को अपनाता है, स्वयं को योग-साधना में संलग्न करता है तो क्रमशः उसके क्लेश क्षीण होते हैं। क्रमिक रूप से उसकी वृत्तियाँ शांत होती हैं। इसी क्रम में वह धीरे-धीरे एकाग्रता व निरुद्ध अवस्था की ओर बढ़ता है। इस अवस्था में स्थिर व स्थापित होने से उसकी स्वयं के स्वरूप में उपस्थिति व अवस्थिति होती है। उसे प्रत्यभिज्ञा होती है—स्वयं के वास्तविक स्वरूप की। हाँ, यह सब होता तभी है, जब उसकी चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध हो पाती हैं। इसलिए तो योग एवं योगी, योगसूत्र व योगसूत्रकार सभी विविध रूपों में यही समझाने का प्रयत्न करते हैं कि यदि जीवन को सार्थक रूप में समझना है तो चित्त को संपूर्ण रूप से समझना होगा।

इस योगकथा की सभी पिछली कड़ियों के संकेत व देशना ये ही रहे हैं। अभी पिछली कथाकड़ी में बताया गया था कि यदि चित्त प्रकाशमान हो तो योगी सर्वज्ञाता हो जाता है। चित्त की इस प्रकाशित अवस्था का परिणाम व परिचय है—प्रतिभा। यह प्रतिभा बुद्धि व अंतर्बोध का सम्मिलन व अतिक्रमण है। जब पतंजलि कहते हैं, उन्हें मिलाना है—**प्रातिभाद्वा सर्वम्** तो उनका यही मतलब है कि बुद्धि व अंतर्बोध का मिलन इतने गहरे से हो जाए कि दोनों आपस में एकदूसरे में घुल-मिल जाएँ। जहाँ तर्क व प्रार्थना का मिलन होता है, वहाँ कार्य और पूजा का मिलन हो जाता है। जहाँ विज्ञान अध्यात्म के विरोध में नहीं होता, जहाँ अध्यात्म विज्ञान का विरोधी नहीं होता, वहाँ प्रतिभा का आविर्भाव होता है। इसके प्रकाश में योगी सर्वज्ञाता होता है।

यह स्थिति बने तो उसमें चित्त को सम्यक रीति से समझने की योग्यता विकसित होती है। इस सत्य को महर्षि ने अपने अगले सूत्र में प्रकट किया है—

हृदये चित्तसंवित्॥३/३४॥

शब्दार्थ= **हृदये**= हृदय में (संयम करने से); **चित्तसंवित्**= चित्त के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ= हृदय पर संयम करने से चित्त की प्रकृति, उसके स्वभाव का ज्ञान हो जाता है।

इस सूत्र के सत्य व मर्म को समझने के लिए हृदय शब्द से परिचित होना आवश्यक है। यों तो प्रचलित हृदय शब्द से सभी परिचित हैं, परंतु यहाँ स्थिति भिन्न है। महर्षि पतंजलि जब हृदय शब्द का प्रयोग करते हैं, तो उनका मतलब भौतिक या शारीरिक हृदय से नहीं है। योग की पारिभाषित व्याख्या में ठीक भौतिक हृदय के पीछे वास्तविक और सच्चा हृदय छिपा है। यह भौतिक शरीर का हिस्सा नहीं है। हालाँकि, भौतिक हृदय इस वास्तविक हृदय से, आध्यात्मिक हृदय से जोड़ने का कार्य करता है। उनके बीच एक समस्वरता अवश्य है, फिर भी आपस में इनका कार्य-कारण संबंध नहीं है। इस आध्यात्मिक हृदय को केवल तभी जाना जा सकता है, जब योगी को प्रतिभा का प्रकाश प्राप्त हो जाए।

इस हृदय की चर्चा भिन्न-भिन्न उपनिषदों ने भिन्न-भिन्न रीति से की है। कठोपनिषद् की तृतीय वल्ली में इसकी चर्चा करते हुए कहा गया है—**ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।** (कठ०३/१) अर्थात—शुभकर्मों के फलस्वरूप मनुष्य शरीर में परमब्रह्म के उत्तम निवास स्थान में हृदय-गुहा में छिपे हुए सत्य का पान करने वाले दो (परमात्मा व जीवात्मा) हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् की द्वितीय वल्ली के प्रथम अनुवाक में इसकी चर्चा कुछ इस ढंग से की गई है—**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।** जो मनुष्य विशुद्ध आकाश में रहने वाले परमेश्वर को हृदय-गुहा में जान लेता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसके लिए कहा गया है—**एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ,** (श्वेताश्वतर० १/१५) उसी प्रकार परमात्मा हमारी हृदय-गुफा में छिपे हैं। ऐसी ही चर्चा अन्यत्र भी की गई है। इसी हृदय में संयम करने से चित्त अर्थात चेतना के स्वभाव का ज्ञान होता है।

हृदय की ही तरह चित्तसंवित् पर भी चिंतन आवश्यक है। यहाँ पर चर्चा जिस चित्त की की गई है, वह प्रतिभा से संपूर्ण चित्त है, प्रकाशित चित्त है। अशुद्ध चित्त या मन को यहाँ पर नहीं समझना चाहिए; क्योंकि मन तो कब का विदा हो चुका, चित्त की अशुद्धियाँ तो कब की जा चुकीं। कारण यह है कि मन या तो बुद्धि प्रधान होता है अथवा भावप्रधान। या तो सूर्यप्रधान मन होगा अथवा चंद्रप्रधान। प्रतिभा प्राप्त करने वाला साधक तो स्वत: ही इन दोनों का अतिक्रमण कर लेता है। वह ऊपर उठ चुका होता है—मन की इन सामान्य अवस्थाओं से। यह चित्तसंवित् योगियों की उन्मन अवस्था है। इसे अ-मन अवस्था भी कह सकते हैं।

इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मन विदा हो चुका होता है। अब तो जो रह जाता है, वह अ-मन है। मन तो अपने स्वभाव से ही भेद करना जानता है। द्वंद्व ही मन का स्वभाव है। सुख-दु:ख, अच्छा-बुरा यह बँटवारा करना, इसी ढंग से सोचना मन का स्वभाव है। इस रूपांतरित व प्रकाशित अवस्था में विभाजन नहीं है। काल भी यहाँ बिना किसी भेद के अखंड रूप में प्रवाहित है। अ-मन की इस अवस्था को प्राप्त करने का मार्ग एक ही है—चित्तशुद्धि, चित्त का परिष्कार। फिर यह योगविधि से हो अथवा तंत्रविधि से, ज्ञानविधि से हो अथवा भक्तिविधि से, जिस विधि से भी चित्त को शुद्ध किया जाए, चित्त प्रतिभा से परिपूर्ण हो जाता है। योगसाधक का स्वयं के साथ समस्वरता एवं सामंजस्य होने लगता है।

योगशास्त्र में इस केंद्र को अनाहत चक्र भी कहते हैं। महर्षि अरविंद ने इसे अपनी व्याख्या में साइकिक बीइंग या चैत्य पुरुष कहा है। उनके द्वारा प्रतिपादित चैत्य पुरुष ही महर्षि पतंजलि का चित्त संवित है। सूफी फकीरों में इस सत्य की चर्चा कुछ अटपटे व अनूठे ढंग से की गई है। एक सूफी फकीर अपने शिष्य को निर्देश देता है—जाओ! एक हाथ की ताली की आवाज सुनो। अब बुद्धि से सोचो तो यह बात बड़ी असंगत व अटपटी है; क्योंकि एक हाथ की ताली तो बज ही नहीं सकती। एक हाथ की ताली की आवाज भी असंभव या नामुमकिन है। आवाज करने के लिए तो हाथ चाहिए, पहले बजाओ और आवाज करो, तब सुनो। आहत का अर्थ है द्वंद्व;

कर्मभिर्महाभद्रिः सुश्रुतो भूत्॥

—ऋग्वेद

मनुष्य अपने महज कर्मों से प्रसिद्ध होता है।

जबकि अनाहत का अर्थ है द्वंद्वविहीन। इस तरह अनहत का अर्थ है—एक हाथ की ताली।

चित्तसंवित् में यही अवस्था प्रकट होती है। चेतना का वास्तविक स्वभाव प्रकट होता है। जब बाहर के सभी प्रकाश नहीं रह जाते हैं, तब प्रकट होता है प्रतिभा का प्रकाश। इसी प्रकाश में प्रकाशित होता है—चेतना का अपना स्वभाव। आत्मा प्रकट करती है—स्वयं के स्वरूप को। इसी तरह जब बाहर-भीतर की सभी आवाजें विलीन हो जाती हैं तो उस ध्वनि को सुनना संभव होता है, जो चेतना की, शांति की, नीरवता की, मौन की अपनी ध्वनि है। इसे यों भी कह सकते हैं कि यहाँ ध्वनिविहीन ध्वनि सुनाई देती है। अपने संपूर्ण अस्तित्व के मिलन का सुखद बिंदु यही है। हृदय पर संयम करने से, चैत्य पुरुष पर ध्यान करने से चेतना के स्वभाव का ज्ञान होता है। उपनिषदों के गुह्य शब्दों के अर्थ इसी अवस्था में साधक की हृदय-गुहा में प्रकट होते हैं।

जब अवढरदानी बने याचक

मदारी और स्वर्णिम कपि के रूप में महादेव एवं हनुमान की लीलाएँ देखकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ स्वयं को कृतार्थ अनुभव कर रहे थे। वह सोच रहे थे नारायण व सदाशिव की अभिन्नता व एकात्मता के विषय में। शिव व विष्णु, विष्णु व शिव सर्वथा एकात्म हैं, अद्वैत हैं। रूप व आकार की बाह्य भिन्नता इनमें दीखे, पर अंतश्चेतना, अंतर्भाव एवं अनुभूतियाँ इनमें हमेशा एक-सी रहती हैं। वे मूढ़ हैं, जो इनमें भेद करते हैं, जो इन्हें दो समझते हैं। जब मदारी व स्वर्णिम कपि के रूप में हर व हनुमान अपनी लीलाएँ कर रहे थे, तो श्रीराम भी इन्हें मुग्ध होकर अहोभाव से देख रहे थे। वे सोच रहे थे कि कितने भक्तवत्सल हैं भोलेनाथ! मुझ पर कृपा करने, कृतार्थ करने अयोध्या तक आ पहुँचे। मर्यादाओं के बंधन ऐसे हैं कि मैं इनका सही से स्वागत, आवभगत भी नहीं कर पा रहा।

श्रीराम के मन की लहरें, उनकी भाव तरंगें महादेव के अंतर्भावों को भिगो रही थीं। हनुमान भी इससे अछूते नहीं थे। विलक्षण थे ये क्षण, सर्वथा अवर्णनीय, संपूर्णतया अपरिभाषित। कोई कुछ कह नहीं रहा था, बस, मन के सरोवर में भावों की तीव्र तरंगें उठ रही थीं। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, मदारी वेष में महादेव एवं स्वर्णिम कपि का रूप धारण किए हनुमान, सभी के नयन एक साथ भीग गए। ऐसा लगा, जैसे कि सबको एक साथ भावसमाधि लग गई हो। राजसभा में इस सत्य पर किसी का ध्यान नहीं गया। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ व श्रीराम की ओर तो किसी ने देखा ही नहीं। हाँ, मदारी व कपि के करतब देखकर सभी ने यह सोचा कि इन दोनों ने सचमुच ही योग का यथार्थ प्रस्तुत किया है।

इसे देखकर सबसे पहले महाराज दशरथ ने हर्ष से उत्साहित होते हुए कहा—"आश्चर्यपूर्ण, अद्‌भुत व अश्रुत!" चक्रवर्ती नरेश के इन शब्दों को सुनकर पूरी सभा भी प्रसन्नता व प्रशंसा की एक साथ अभिव्यक्ति करने लगी। सभी की प्रसन्नता को देखकर महाराज ने श्रीराम की ओर देखा और पूछा—"पुत्र! तुम्हें कैसा लगा, इनका यह खेल?" इस पर श्रीराम ने कहा—"पिताश्री! मैं आनंदित होने के साथ भावविभोर हूँ। वैसे मैं एक सत्य कह सकता हूँ कि इन मदारी का अपने कपि के साथ आना अयोध्यावासियों का सौभाग्य है। इनके किसी कार्य की समीक्षा कर सकना मेरे लिए संभव ही नहीं।" श्रीराम के इस कथन से महाराज बस इतना समझे कि उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम, मदारी व कपि के आगमन से प्रसन्न हैं। इस प्रसन्नता को अनुभव करके चक्रवर्ती नरेश दशरथ ने कहा—"मदारी! तुमने अपने कपि के साथ मेरे पुत्रों व संपूर्ण सभा को आनंदित कर दिया है।

"मैं तुम्हें पुरस्कृत करना चाहता हूँ। तुम जो भी चाहो माँग लो!" दशरथ के इस कथन पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ व श्रीराम ने एकदूसरे की ओर देखा। आकाश में उपस्थित ब्रह्मा जी, देवराज इंद्र, देवगणों के साथ सोचने लगे कि संपूर्ण सृष्टि को निरंतर देते रहने वाले अवढरदानी आशुतोष को भला कोई क्या दे सकता है? फिर ये माँगेंगे भी तो क्या? देवों की सोच, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ व श्रीराम का असमंजस समझते हुए मदारी ने अपना डमरू बजाते हुए कहा—"महाराज! जिनके पुत्र श्रीराम हों, वे किसी को कुछ भी देने में समर्थ हैं। हम ठहरे मदारी, मेरी आवश्यकता है ही कितनी? मैं और मेरा कपि, दोनों के लिए अरण्य, पर्वत सभी कुछ स्वतः ही दे देते हैं। सभी को पोषित करने वाली प्रकृति ने मेरे पोषण का दायित्व ले रखा है, फिर कुछ माँगने के लिए बचा ही क्या है?"

मदारी की इस निरपेक्षता ने महाराज को मुग्ध कर दिया। वह कहने लगे—"मदारी! तुम तो सचमुच ही योगी व संन्यासी की तरह बातें कर रहे हो। माना कि तुम्हारी आवश्यकताएँ नहीं हैं, लेकिन तुम्हारा अपना परिवार तो होगा, उसी के लिए कुछ माँग लो।" महाराज दशरथ के इस कथन पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ, श्रीराम एवं आकाश में उपस्थित देवगण सभी चौंक उठे। वे सोचने लगे—"यह कैसी बात कह डाली महाराज ने।" मदारी का परिवार अर्थात महादेव का परिवार! उनके परिवार का प्रत्येक सदस्य संपूर्ण ब्रह्मांड को मनचाहा वरदान देने में समर्थ है। उनकी धर्मपत्नी अर्थात राजराजेश्वरी भगवती

अन्नपूर्णा माता पार्वती अकेले ही ब्रह्मांड को, इसमें बसने वाले प्रत्येक प्राणी को तृप्त,, तुष्ट करने में सक्षम हैं। ज्येष्ठ पुत्र कार्तिकेय अपनी सामर्थ्य से देवों का भी संरक्षण करते हैं। उनके नाम से असुरता कंपित होती है व देवत्व संरक्षित, संवर्द्धित होता है। उनके कनिष्ठ पुत्र गणेश शुभता के वरदाता हैं। इनके नाम स्मरण से ही विघ्न भागते हैं।

इन्हें कोई क्या देगा भला? स्वयं महादेव, वे तो योगियों व यतियों के परम आराध्य हैं। सर्वथा निर्लेप, निर्विशेष व निर्विकार। इनकी महिमा का बखान करना तो स्वयं शेष व शारदा के लिए कठिन है। त्रिभुवनपति-त्रिपुरारी को भला त्रिभुवन में ऐसा क्या है, जो दिया जा सकता है। उनके इस सत्य से अनजान महाराज दशरथ उनसे कुछ लेने का हठ कर रहे थे। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ एवं श्रीराम मर्यादावश कुछ भी नहीं बोल पा रहे थे। अंतर्यामी आशुतोष ने सभी के अंतर्भावों को पढ़ लिया। पढ़कर मुस्कराए और बोले—"महाराज! आप समर्थ हैं। आप यदि देना चाहते हैं तो कुछ ऐसा दीजिए, जो आपकी गरिमा के अनुकूल हो।"

"अवश्य मदारी! तुम बस, माँगो!! हम रघुवंशी अपने वचन पर सर्वथा अडिग रहते हैं।" "सो तो सर्वविदित है महाराज! हालाँकि, मैंने महर्षियों के मुख से सुना है कि वचन के साथ विवेक अवश्य संयुक्त होना चाहिए। फिर भी आपका आभार प्रकट करते हुए मैं ब्रह्मर्षि वसिष्ठ एवं ज्येष्ठ कुमार श्रीराम के सत्संग का आकांक्षी हूँ। यदि एक दिवस भी ब्रह्मर्षि व ज्येष्ठ कुमार के साथ रह सका तो मैं स्वयं को धन्य समझूँगा।"—मदारी ने कहा। महादेव के इस कथन पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ व श्रीराम एक साथ सोचने लगे—हे भोलेनाथ! आप सचमुच अवढरदानी हो। आपने माँगकर भी दे डाला। आप जैसा भक्तवत्सल कोई दूसरा नहीं प्रभु! महाराज दशरथ को मदारी की यह माँग विचित्र व अटपटी लगी। वह बोले—"मदारी! तुम केवल योगविधियों का ही प्रदर्शन नहीं करते, बल्कि तुम्हारी अंतश्चेतना भी योगियों की ही भाँति निर्मल है। माँगा भी तो क्या—बस, सत्संग।

"हाँ, यह अवश्य है कि जो तुमने माँगा है, उसे देने का अधिकार मेरे पास नहीं है। गुरुदेव वसिष्ठ ही आपकी इस माँग को पूर्ण कर सकते हैं। मैं इसके लिए उनसे प्रार्थना अवश्य कर सकता हूँ।"—इतना कहकर महाराज दशरथ ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर अपना सिर नवाया। यह देखकर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ बोले—"राजन्! मुझे मदारी का प्रस्ताव सर्वथा स्वीकार है। मैं और वत्स राम इन मदारी के साथ एक दिवस अवश्य व्यतीत करेंगे। इन्हें अयोध्या का शुभ दर्शन कराएँगे। ये हमारे साथ सरयूतट पर भ्रमण करेंगे। राजोद्यान में वास करेंगे।" वसिष्ठ की बात सुनकर महाराज ने कहा—"गुरुदेव! मैं उपकृत हूँ। आपने मेरे वचन का मान रख लिया।"

इतना कहकर महाराज ने श्रीराम की ओर देखा और बोले—"पुत्र! तुम गुरुदेव के साथ रहकर इन मदारी व उनके कपि की इच्छा पूर्ण करो। वैसे भी ये हमारे अतिथि हैं। इनके आगमन से सचमुच राजसभा का और अयोध्या का वातावरण दिव्य हो गया है। भले ही इनका वेश मदारी का है, परंतु इनका आचरण योगियों का है। इनका सान्निध्य निश्चित ही कल्याणकारी होगा।" अपने पिता की इन बातों ने श्रीराम को पुलकित व प्रसन्न कर दिया। वे तो स्वयं ही महादेव के सान्निध्य के लिए उत्सुक थे। पिता की अनुमति ने उनकी आकांक्षा पूर्ण कर दी। ❀

ऋषि सुदीर्घ अपने आरण्यक में शिष्यों के साथ बैठे थे। शिष्यों ने प्रश्न किया—"गुरुदेव! लगभग सभी नदियाँ पूजित हैं, पर सागरों को ऐसा सम्मान मिलता दिखाई नहीं पड़ता, ऐसा क्यों?" ऋषि सुदीर्घ ने उत्तर दिया—"प्रेम और सम्मान उन्हें मिलता है, जो वितरण करते हैं, संग्रह नहीं। नदी सब कुछ खोते हुए भी बहती जाती है; जबकि सागर आप्लावित होते रहते हैं। जो देते हैं, वे ही पाते हैं।" शिष्यों को दान की महिमा ज्ञात हो गई।

नीति और नियति को समझने वाले ही बनते हैं निमित्त

(श्रीमद्भगवद्गीता के विश्वरूपदर्शनयोग नामक एकादश अध्याय की सोलहवीं किस्त)

[एकादश अध्याय की पंद्रहवीं किस्त में इकतीसवें व बत्तीसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इनमें से इकतीसवें श्लोक में विश्वरूप भगवान के भयावह उग्र स्वरूप को देखकर व्यथित, व्याकुल एवं भयभीत अर्जुन उनसे प्रश्न पूछते हैं—''भगवन्! इस उग्र रूप में आप कौन हैं? हे देवश्रेष्ठ! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैं आपको नमन करता हूँ। हे आदिपुरुष! मैं विशेष रूप से आपके बारे में जानना चाहता हूँ। मैं न तो आपको जानता हूँ और न आपकी प्रवृत्ति को।'' स्वाध्याय व सत्संग की निरंतरता में जीने वाले अर्जुन अपनी इस अनुभूति के इन क्षणों में हतप्रभ हैं, हैरान हैं। वह नहीं समझ पा रहे हैं कि संकटों का निवारण करने वाले परमात्मा आज संकटों के महाकारण बनकर क्यों उपस्थित हैं?

अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में बत्तीसवें श्लोक में श्रीभगवान उनकी जिज्ञासा का उत्तर देते हुए कहते हैं—''हे अर्जुन! अपने इस स्वरूप में मैं काल हूँ। कर्मों का परिणाम देने में सर्वथा सक्षम काल किसी भी समय में, किसी भी स्थान पर किए गए प्रत्येक कर्म का लेखा-जोखा रखता है। कोई कहीं भी छिप ले, किसी से झूठ बोल ले, परंतु सर्वज्ञाता-सर्वनियंता काल से कुछ भी छिपा नहीं है। वह प्रत्येक कर्म के परिणाम को कर्त्ता तक पहुँचा ही देता है। दुर्योधन के दुष्कर्मों को मौन रहकर देखने वाले भीष्म व द्रोण अब उसकी रक्षा में सक्षम न हो सकेंगे। महारथी कर्ण अब उसे बचा न सकेगा।'' श्रीभगवान कहते हैं—''हे अर्जुन! तुम युद्ध करो अथवा नहीं, ये सब तो मारे ही जाएँगे; क्योंकि इन्हें काल के द्वारा दंडित किया जाएगा। काल से किसी की रक्षा कोई नहीं कर सकता है। इन सभी को दंडित करने के लिए मैं स्वयं काल होकर प्रकट हुआ हूँ।'']

इसके आगे श्रीभगवान अर्जुन को आदेश देते हैं—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥ ३३॥

शब्दविग्रह—तस्मात्, त्वम्, उत्तिष्ठ, यशः, लभस्व, जित्वा, शत्रून्, भुङ्क्ष्व, राज्यम्, समृद्धम्, मया, एव, एते, निहताः, पूर्वम्, एव, निमित्तमात्रम्, भव, सव्यसाचिन्।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! अतएव (**तस्मात्**), तू (**त्वम्**), उठ (**उत्तिष्ठ**), यश (**यशः**), प्राप्त कर (**लभस्व**) और शत्रुओं को (**शत्रून्**), जीतकर (**जित्वा**), धन-धान्य से संपन्न (**समृद्धम्**), राज्य को (**राज्यम्**), भोग (**भुङ्क्ष्व**), ये सब शूरवीर (**एते**), पहले ही (**पूर्वम्, एव**), मेरे द्वारा (**मया**) मारे हुए हैं (**निहताः**)। हे बाएँ हाथ से धनुष चलाने में कुशल महावीर (**सव्यसाचिन्**), तू तो केवल निमित्तमात्र (**निमित्तमात्रम्, एव**), बन जा (**भव**)।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक महाकाल की पुकार है। महाकाल का अपने लीला सहचरों के लिए आह्वान है। जीवन में, समय के प्रवाह में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जब भगवान स्वयं आते हैं, उन्हें आना पड़ता है। शास्त्र कहते हैं, संत कहते हैं, कथाएँ कहती हैं, पुराण कहते हैं कि जब-जब अधर्म बढ़ जाता है, धरती पर तब भगवान आते हैं। धर्म और अधर्म की परिभाषा बड़ी सूक्ष्म है, गहरी है। सामान्य क्रम में धर्म उसे समझा जाता है, जहाँ लोग पूजा-पाठ करते हैं, जहाँ मंदिरों का निर्माण होता है, कर्मकांड की बहुतायत होती है, ढेरों यज्ञ-हवन होते हैं। इसके विपरीत जहाँ ऐसा नहीं है, वहाँ अधर्म है, यह मान लिया जाता है।

प्रचलन यही कहता है, प्रथाएँ यही कहती हैं, परंपराओं के स्वर इसी की गवाही देते हैं, लेकिन परमात्मा ऐसा नहीं कह रहे हैं। महाभारत के महायुद्ध में यह स्थिति बड़ी विलक्षण है। यहाँ सब कुछ उलट-पुलट हो गया

है। भीष्म ख्यातिप्राप्त धर्मात्मा हैं। बड़ी चर्चा है उनके धर्माचरण की। अपने निजी जीवन में वे पवित्रता की प्रतिमूर्ति हैं, फिर भी दुर्योधन के अनेक दुष्कृत्यों में से एक का भी विरोध नहीं कर पाए। समर्थ योद्धा होते हुए भी वे परंपराओं की अवहेलना नहीं कर पाए। अनेक सद्गुणों के स्वामी होते हुए भी वह परमात्मा का साहचर्य नहीं निभा सके।

कुछ यही स्थिति आचार्य द्रोण की है। वे गुरु हैं, कौरव व पांडव सभी शिष्य हैं उनके। अपने कौरव शिष्यों को वह धर्म का पाठ नहीं पढ़ा पाए। कैसी विडंबना है कि महान योद्धा होते हुए भी वे अपने पांडव शिष्यों की पत्नी का वस्त्रहरण होते हुए देखते रहे। उनमें उस अधर्मसभा को छोड़ने का साहस न हुआ। सामर्थ्य, शौर्य, विद्या होते हुए भी उन्हें परमात्मा के साहचर्य का सुयोग न मिल सका। यही स्थिति कुलगुरु कृपाचार्य की रही। कुलगुरु का कर्त्तव्यकर्म होता है—कुल में धर्म की प्रतिष्ठा। कुल के सभी व्यक्ति धर्माचरण करें, यह निश्चित करना, इसे निर्धारित व नियंत्रित करना कुलगुरु का धर्म होता है। कौरवों के अधर्माचरण के मौन साथी बने रहे कृपाचार्य। उनके संग-साथ को त्यागने की हिम्मत नहीं जुटा सके।

दानवीर कर्ण की स्थिति इनसे कुछ भिन्न नहीं रह सकी। महान योद्धा कर्ण, महादानी कर्ण अपने जीवन में धर्म को परिभाषित न कर सका। इन सभी के जीवन में धर्म की स्थिति की समीक्षा करें तो पाएँगे कि इनका धर्माचरण संभवतः समाज में यश व प्रतिष्ठित होने से बँधा था। धर्म की यथार्थता, उसकी सार्थकता, प्रकृति व परमात्मा का साहचर्य निभाने में है। इसका निहितार्थ पीड़ा व पतन के निवारण-निराकरण में है। धर्म सद्भाव-सद्विचार एवं सत्कर्म के सम्मिलन में रहता है। धर्म की ओट में भीष्म पितृमोह से, आचार्य द्रोण पुत्रमोह से एवं महावीर कर्ण मित्रमोह से बँधे रहे। मोह से बँधे व्यक्ति भला समाज के व्यापक सरोकार से अपना मिलन कैसे कर पाते! परंपराएँ नहीं, अपितु विवेक—यही धर्म की परिभाषा है। इसे समझने में भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य व कर्ण कभी सक्षम नहीं हो पाए।

परमात्मा की पुकार तो सबके लिए होती है। महाकाल का आह्वान सभी के लिए होता है। अगर कोई इसकी अनसुनी कर दे, तो भगवान क्या करें? श्रीकृष्ण तो अपना तत्त्वज्ञान लेकर कौरवों की सभा में गए थे। सभी थे वहाँ, ज्ञानियों-महावीरों की सभा थी। सभी प्रतिष्ठित लोग थे वहाँ, परंतु किसी ने नहीं सुना। श्रीकृष्ण ने कौरवसभा में भी अपना विराट रूप दिखाया था, लेकिन किसी ने उसे देखने-समझने की कोशिश नहीं की। अहंकारी दुर्योधन ने तो इसे श्रीकृष्ण का माया-प्रपंच कह डाला। परमात्मा का साथी बनने के लिए कोई भी तैयार न हुआ। इससे नुकसान परमेश्वर का नहीं हुआ, बल्कि उस समाज, संस्कृति, सभ्यता का नुकसान हुआ, जिसने परमात्मा को नकारा।

परमेश्वर ने तो अपने लीलासहचर ढूँढ़ लिए। पांडवों के रूप में उन्हें उनके सहयोगी मिल गए। भगवान को सामर्थ्य नहीं, संवेदना चाहिए। सामर्थ्य के विचार से तो कौरव पक्ष भारी था। इसे उन्होंने अपनी नारायणी सेना देकर और भी प्रबल बना दिया। लेकिन इससे क्या? अपने गीता उपदेश में वे कहते हैं—"परमेश्वर मैं ही हूँ, बलवानों का बल। ऐसे में जहाँ वे स्वयं हैं, वहाँ भला बल की क्या कमी।" अर्जुन से स्वयं अपना परिचय बताते हुए कहते हैं—"हे अर्जुन! मैं ही हूँ महाकाल।" वे कहते हैं—डरो नहीं, उठो और यश का लाभ करो।

जिन्हें तुम महाबलशाली समझ रहे हो, उन्हें तो उनके कर्मों ने पहले ही मार दिया है। दुर्योधन के अधर्माचरण ने स्वयं उसे और उसके सहयोगियों को पहले से ही मार डाला है। बात विचारणीय है। कर्त्ता का जीवन ही उसका कर्म है, उसकी मृत्यु भी उसका अपना कर्म है। सोचना स्वयं उसे है कि वह किस पथ पर चलता है? शुभकर्म अथवा अशुभकर्म, किसका चयन करता है वह? पीड़ा व पतन के निवारण के लिए तत्पर होता है वह, अथवा लोगों को पीड़ित करने के लिए उन्हें पतन के गर्त में गिराने के लिए संलग्न होता है वह? चयन पर अधिकार उसका अपना है, परंतु इस चयन का परिणाम देने का अधिकार काल ने स्वयं अपने हाथों में सुरक्षित रखा है। इसीलिए परमात्मा स्वयं श्रीकृष्ण रूप धारण करके अर्जुन से कहते हैं—"इस अवसर को चूको मत। तुम अभी इसी क्षण उठो और मुझ परमात्मा के निमित्त बन जाओ।"

इतना कहकर श्रीभगवान आगे कहते हैं—

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्॥३४॥

शब्दविग्रह—द्रोणम्, च, भीष्मम्, च, जयद्रथम्, च, कर्णम्, तथा, अन्यान्, अपि, योधवीरान्, मया, हतान्, त्वम्, जहि, मा, व्यथिष्ठाः, युध्यस्व, जेतासि, रणे, सपत्नान्॥

शब्दार्थ—तथा इन— द्रोणाचार्य (**द्रोणम्**) और भीष्मपितामह (**च, भीष्मम्**), तथा (**च**), जयद्रथ (**जयद्रथम्**), और (**च**), कर्ण (**कर्णम्**), तथा (**तथा**), और भी बहुत से (**अन्यान्, अपि**), मेरे द्वारा (**मया**), मारे हुए (**हतान्**), शूरवीर योद्धाओं को (**योधवीरान्**), तू (**त्वम्**), मार (**जहि**), भय मत कर (**मा, व्यथिष्ठाः**), निस्संदेह तू युद्ध में (**रणे**), वैरियों को (**सपत्नान्**), जीतेगा (**जेतासि**), इसलिए युद्ध कर (**युध्यस्व**)।

भगवान विराट रूप धारण करके अर्जुन को जीवन का व्यापक परिदृश्य स्पष्ट कर रहे हैं। इस व्यापक परिदृश्य को समझने के लिए तीन चीजों को समझ लेना जरूरी है—(१) नीति, (२) नियति एवं (३) निमित्त। जो इन तीनों को समझ लेते हैं, वो जीवन की व्यापकता को समझ सकते हैं। इनमें से पहली चीज है—(१) नीति अर्थात विचार और विधान। किसने अपने जीवन के लिए क्या विषय और क्या विधान तय किए हैं। इसके दो ही रूप होना संभव है। इसका पहला रूप है—प्रकृति व परमात्मा के सहयोगी बन कर जीना। इनके साथ साहचर्य निभाना। इसे 'धर्म' भी कह सकते हैं। ऐसे जीवन को धर्माचरण व धर्मपरायणता के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है। इसका दूसरा स्वरूप है—प्रकृति व परमात्मा के, जीवन की विराट व्यवस्था के विपरीत जीना। विराट की धारा के विपरीत बहने की कोशिश करना। इसे 'अधर्म' कहकर भी परिभाषित किया जा सकता है। ऐसे जीवन का केंद्र बनता है—अहंकार, जो जीवन को विराट से पृथक कर देता है।

किसके जीवन की नीति क्या है? उसी के अनुसार उसकी नियति तय होती है। पथ के अनुरूप ही गंतव्य निर्धारित होता है। जो व्यक्ति जिस पथ पर जा रहा है, उसके अनुरूप यह सुनिश्चित हो जाता है कि वह कहाँ जाएगा अथवा किधर पहुँचेगा। भगवान श्रीकृष्ण जीवन के व्यापक व विराट परिदृश्य को स्पष्टतया देख रहे हैं। उसी के अनुरूप वे अर्जुन को स्पष्ट कर रहे हैं। वे कह रहे हैं—"तुम युद्ध करो। तुम्हें यश मिलेगा। जिन्हें तुम महावीर समझ रहे हो, जिन्हें तुम अजेय मान रहे हो, वे पहले ही मारे जा चुके हैं। वे कहते हैं—'मा व्यथिष्ठाः' अर्थात मत करो भय। भीष्म हो अथवा द्रोण या कर्ण अथवा दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ, ये सभी मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। दुर्योधन के अधर्म में सहयोगी होने के कारण महाकाल इन्हें पहले ही दंडित कर चुके हैं। इन सबका वध तो पहले ही मेरे द्वारा किया जा चुका है। तुम्हें तो अकारण ही यश मिलना है।

"तुम सोच रहे हो कि इन्हें मारने से हिंसा होगी, लेकिन मरे हुए को मारने में हिंसा कैसी! ये सब तो मृत हैं, तुम्हें तो बस, मुरदों को आखिरी धक्काभर देना है, जैसे ऊँट पर कोई आखिरी तिनका रख दे और ऊँट बैठ जाए। बस, तुम्हें तो आखिरी तिनका रखना है, ऊँट तो पहले ही बैठने के करीब है। तुम नहीं रखोगे यह तिनका, तो कोई और रख देगा।" भगवान श्रीकृष्ण इन सभी की नियति को पहचान चुके हैं। वे जान चुके हैं कि दुर्योधन जहाँ खड़ा है; उसके साथी जहाँ खड़े हैं; उसके मित्रों की फौज जहाँ खड़ी है; वे जो कुछ कर चुके हैं; वे सब जिस पथ पर लंबे समय तक चल चुके हैं, उसके परिणाम में उनका घड़ा भर चुका है और फूटने के करीब है। अर्जुन को तो बस, मुफ्त में यश का भागीदार बनना है। भगवान सलाह दे रहे हैं कि तुम यह मौका मत गँवाओ।

अर्जुन को प्रबोध देते हुए भगवान तीनों बातों को स्पष्ट कर रहे हैं। इनमें से पहली बात वे कह रहे हैं—"तुम जीवन की नीति को, उसके विचार व विधान को पहचानो। धर्म व अधर्म के मर्म को जान लो। तुम्हारे व तुम्हारे भाइयों के कर्म व उनका जीवन-पथ तुम्हें स्पष्ट है। दुर्योधन व उसके साथी-सहयोगियों के जीवन का पथ भी तुम्हें स्पष्ट है। दीर्घकाल तक यह यात्रा चलती रही है। अब इसका परिणाम आने वाला है। अब नियति स्पष्ट होने वाली है, उसे स्वीकार कर लो।" वे कहते हैं—"नियति कहती है कि अब समय आ गया है, जब धर्माचरण तुम्हें पुरस्कृत करने वाला है। ठीक इसी तरह दुर्योधन व उसके साथियों की नियति उन्हें दंडित करने वाली है। तुम्हारी विजय, सुनिश्चित हो चुकी है और उनकी पराजय।" भगवान कहते हैं—"मैं तुम्हें आश्वस्त कर रहा हूँ। मैं तुम्हें विश्वास दिला रहा हूँ कि तुम जीतोगे और वे पराजित होंगे। इसका कारण है नीति और नियति। तुम्हारी जीवन-नीति ने तुम्हारी नियति निर्धारित की है और उनकी जीवन-नीति ने उनकी नियति निर्धारित कर दी है।"

अब तीसरी बात भगवान कहते हैं—"तुम्हें निमित्त बनना है। प्रकृति व परमात्मा का निमित्त बनना है। विराट के हाथों का यंत्र बनना है। यंत्र बन जाना है महाकाल के हाथों का।" निमित्त बनना सबके बस का नहीं है। निमित्त

बनने के लिए निरहंकारी बनना पड़ता है, अहंकार से रहित होना पड़ता है। यह आसान नहीं है। प्राय: सभी की—ज्यादातर लोगों की रुचि अहंकार में है। अपनी पृथकता, अपनी विशेषता सिद्ध करने में है। ऐसे लोग अनायास ही परमात्मा व प्रकृति के विरोधी हो जाते हैं। ये कभी निमित्त नहीं बन सकते। इनका अहंकार इन्हें कभी निमित्त नहीं बनने देता। निमित्त बनने के लिए तो अहंकार का समर्पण, विसर्जन व विलय चाहिए। इसके लिए तो अपनी निजता, अपने अहंकार की क्षुद्रता विराट में विसर्जित करनी पड़ेगी। स्वयं को व्यापकता में समर्पित करना पड़ेगा।

अर्जुन के अंदर यह पात्रता है। उनकी यह विशेषयोग्यता है। सच तो यह है कि अर्जुन की इसी विशेषता के कारण, इसी विशेषयोग्यता के कारण गीता का ज्ञान-बोध, गीता का अनुपम उपदेश संभव हो सका। जब उन्होंने श्रीभगवान से कहा—"हे प्रभु! **शाधि मां त्वा प्रपन्नम्।**" अर्थात मुझे राह दिखाओ, मैं आपकी शरण में हूँ। शरणागति या अहंता का, निजता का समर्पण— व्यक्ति को भगवान का निमित्त बना देता है। मैं-मैं करते रहने वाले कभी भी दैवी योजना के, ईश्वरीय कार्य के निमित्त नहीं बन सकते। उनके लिए यह असंभव है।

अर्जुन के धर्माचरण के कारण, उनकी तपस्या के कारण, भक्ति के कारण, सरलता के कारण भगवान उनसे कह रहे हैं, तुम विराट के निमित्त बन जाओ। जो विराट का निमित्त है, जो महाकाल का सहयोगी, सहचर है उसे हराने का कोई उपाय नहीं है। जो नदी के व्यापक प्रवाह के साथ बह रहा है, उसको हराने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए भी नहीं है; क्योंकि नदी के प्रवाह का समस्त बल उसके साथ है। इसलिए भी नहीं है; क्योंकि उसने कभी जीतने की कोशिश भी नहीं की है। वह तो हमेशा यही कहता है कि नदी की व्यापक धारा ही मेरा जीवन है। इसी तरह परमात्मा का निमित्त बनने वाला भी परमात्मा को अपना जीवन बना लेता है। ऐसा ही निमित्त बनने के लिए, अपना लीलासहचर बनने के लिए भगवान अर्जुन का आह्वान करते हैं। (क्रमश:)

युग निर्माण योजना की मजबूत आधारशिला रखे जाने का अपना मन है। यह निश्चित है कि निकट भविष्य में ही एक अभिनव संसार का सृजन होने जा रहा है। उसकी प्रसव-पीड़ा में अगले वर्ष अत्यधिक अनाचार, उत्पीड़न, दैवीय कोप, विनाश और क्लेश, कलह से भरे बीतने हैं। दुष्प्रवृत्तियों का परिपाक क्या होता है, इसका दंड जब भरपूर मिलेगा, तब आदमी बदलेगा। यह कार्य महाकाल करने जा रहा है। हमारे हिस्से में नवयुग की आस्थाओं और प्रक्रियाओं को अपना सकने योग्य जनमानस तैयार करना है। लोगों को यह बताना है कि अगले दिनों संसार का एक राज्य, एक धर्म, एक अध्यात्म, एक समाज, एक संस्कृति, एक कानून, एक आचरण, एक भाषा और एक दृष्टिकोण बनने जा रहा है, इसलिए जाति, भाषा, देश, संप्रदाय आदि की संकीर्णताएँ छोड़ें और विश्वमानव की एकता की, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना स्वीकार करने के लिए अपनी मनोभूमि बनाएँ।

— परमपूज्य गुरुदेव

साधकों के लिए आह्वान

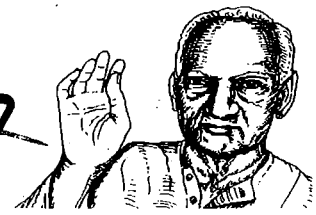

विगत अंक में आपने पढ़ा कि अष्टग्रही योग आने के अवसर पर स्थानीय समाचारपत्रों ने परमपूज्य गुरुदेव की टिप्पणी लेनी चाही। गुरुदेव ने व्यापक तबाही की आशंकाओं को निर्मूल बताया, परंतु सबको यह सचेत किया कि आने वाले वर्ष महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को लेकर आ रहे हैं और उस वर्ष की वसंत पंचमी से विभिन्न रूपों में परिवर्तन के संकेत मिलने भी प्रारंभ हो गए। उस वर्ष के वसंतोत्सव में उन्होंने 'युग निर्माण योजना' पद को परिभाषित करते हुए उसमें चार जीवन-सूत्रों को समेटा—साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा। इन्हीं दिनों हिंदू महासभा के नेता सेठ बिशन चंद्र गुरुदेव से मिलने गायत्री तपोभूमि आए। उनसे वार्तालाप के क्रम में गुरुवर ने उन्हें आगाह किया कि वर्षांत तक हमें एक राष्ट्रीय संकट से जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए; क्योंकि सीमा पर संकट आ सकता है। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

पवित्र रहें और आगे बढ़ें

गायत्री जयंती पर हुई गोष्ठी में गुजरात से आए निरंजन आत्मयोगी ने एक समस्या रखी थी। उनका कहना था कि हम और हमारे साथी दिन-रात प्रचार में जुटे रहते हैं, खूब यज्ञ-हवन करते हैं, लेकिन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं होता। वे संध्या गायत्री भी करते रहते हैं, फिर भी वहीं के वहीं। कुछ और साधकों ने भी प्रचार में आने वाली इस तरह की निराशा का जिक्र किया था। आचार्यश्री ने कहा कि निराश होने की जरूरत नहीं है और न ही थोड़े से प्रयत्नों के बड़े परिणामों की आशा करनी चाहिए। तुम अपने काम को करते रहो और पवित्र जीवन जियो। बुद्ध ने केवल प्रचार किया और पवित्र जीवन जिया। ईसामसीह, शंकराचार्य, रामानुज और तुलसीदास भी लोगों से आशा-अपेक्षा करते नहीं घूमे, उन्होंने पवित्र जीवन जिया और लोगों को बदलने के लिए प्रेरित किया। हमारा अपना व्यक्तित्व या पवित्र जीवन ही लोगों को प्रेरित करता है। पवित्र और प्रेरक बनो तो तुम्हारे आस-पास साधकों और कार्यकर्त्ताओं की बाढ़ आ जाएगी।

सितंबर, १९६२ में लोकसभा चुनाव के बाद केंद्र में जवाहर लाल नेहरू फिर प्रधानमंत्री बने। राज्य विधानसभाओं में भी प्राय: कांग्रेस का एकछत्र साम्राज्य रहा। नेहरू जी के नेतृत्व को कहीं से चुनौती मिलती नहीं दिखाई दी। चुनाव अभियान में पूर्वोत्तर सीमा पर हो रही सैनिक हलचलें, तिब्बत का मसला और कश्मीर का सवाल मुद्दा बना था। मतदाताओं ने इन सवालों को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया था। १९६२ के चुनाव में नेहरू की छवि शांतिदूत की तरह उभरकर आई थी। लोग उनकी तुलना सम्राट अशोक और सम्राट अकबर से करने लगे थे। उस दौर को नेहरू शासन का स्वर्णिम काल कहते हैं।

तीसरा आम चुनाव नेहरू के लिए राजसूय यज्ञ की तरह सिद्ध हुआ था। देश अभी नेहरू की विजय का उत्सव मना ही रहा था कि चीनी सेना ने लद्दाख और उत्तरी-पूर्वी सीमा पर भारी हमला कर दिया। तीस हजार से ज्यादा सैनिक भारतीय सीमा में घुस आए। नेहरू इस आक्रमण से हक्के-बक्के रह गए। सेनाएँ इस स्थिति में नहीं थीं कि चीनी आक्रमण का प्रतिरोध कर सकें। एक तो चीनी सैनिक संख्या में बहुत ज्यादा थे। वे आक्रामक थे और दूसरे भारत ने सीमाओं पर पर्याप्त चौकसी नहीं बरती थी।

भारत कूटनीतिक क्षेत्र में भी ठीक से पहल नहीं कर पाया। भारत सरकार ने चीनी आक्रमण के संबंध में दुनिया के तमाम देशों को पत्र लिखे। कुछ देशों ने भारत के प्रति सहानुभूति जताई। उसके पक्ष का समर्थन भी किया, लेकिन सक्रिय रूप से कोई भी देश सहायता करने नहीं आया। चीनी सेनाएँ महीने भर तक सीमाओं

पर उत्पात मचाती भीतर तक घुस आईं। लद्दाख के एक बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया। उत्तरी-पूर्वी सीमांत (नेफा) के एक बड़े भाग पर कब्जा कर लिया। उसके बाद २१, नवंबर को एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी और अपने आप ही चीनी सेनाएँ काफी पीछे तक चली गईं। युद्ध महीने भर से ज्यादा नहीं चला था, लेकिन उसने पूरे देश के मनोबल को झकझोर दिया था। गायत्री परिवार के सदस्यों ने युद्ध के दिनों में कोई छुट्टी नहीं करने और अपने कार्यों को तत्परता से पूरा करने की प्रतिज्ञा की थी। आचार्यश्री ने साधकों को निर्देश दिया था कि इस अवधि में तमाम मतभेद भुला दिए जाएँ। धर्म, संप्रदाय, जाति, दल और भाषा, प्रांत के विवादों को फिलहाल दरकिनार किया जाए।

आचार्यश्री ने यह भी कहा कि जो युवक अपने आपको सेना के लायक समझते हैं, वे सेना में भरती हों। युद्ध की खबरों ने जनमानस को बुरी तरह विचलित और विक्षुब्ध कर दिया था। भारत सरकार युद्ध के सामरिक और कूटनीतिक, दोनों ही मोर्चों पर विफल-सी रही थी। इसलिए भी लोगों में हताशा का भाव बढ़ने लगा। आचार्यश्री ने अपने साधकों से स्वयंसेवकों की तरह काम करने की अपील की। कहा कि युद्ध समाप्त होने के बाद राष्ट्रनिर्माण के कई मोर्चे खुलेंगे। ये मोर्चे राष्ट्र के आहत हुए स्वाभिमान को जगाने और आत्मनिर्भर बनाने के लिए चुनौती की तरह होंगे। मथुरा में हुई एक गोष्ठी में उन्होंने युद्ध से उत्पन्न हुए संकट के बारे में कहा था कि विराम के बाद भी युद्ध समाप्त हुआ नहीं मान लेना चाहिए। कम्युनिस्ट शासन की प्रवृत्ति विस्तारवादी है। अखबारों में छप रही खबरों और विश्लेषणों से स्पष्ट होता है कि वह सीमा पर अपनी सैनिक हलचलें बढ़ाएगा।

दिसंबर, १९६२ में छह गुटनिरपेक्ष देशों का सम्मेलन हुआ। उसमें श्रीलंका, बर्मा, कंबोडिया, इंडोनेशिया, घाना और संयुक्त अरब गणराज्य के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में भारत-चीन विवाद को बातचीत से निपटाने के प्रस्ताव पास किए गए। भारत सरकार ने तो इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया, लेकिन चीन ने उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। उलटे उन प्रस्तावों का मुँह चिढ़ाते हुए पश्चिमी क्षेत्र में सात असैनिक चौकियाँ स्थापित कर लीं। अपनी बनाई और थोपी हुई नियंत्रण रेखा पर उसने पत्थरों के ढेर जमा करने और बाड़ लगाना भी शुरू कर दिया।

मथुरा की कुछ नागरिक और सामाजिक संस्थाओं ने दिसंबर के अंतिम सप्ताह में विचारगोष्ठी का एक कार्यक्रम किया। विषय था—'राष्ट्रीय संकट और हमारे नागरिक दायित्व'। गोष्ठी में वक्ताओं ने देश में राजनीतिक जागरूकता लाने, अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना चाहिए। वक्ताओं में आचार्यश्री के अतिरिक्त किशोरी शरण गोस्वामी, प्रभुदयाल, प्रो० अवध बिहारी, स्वामी शरणानंद बिहारी आदि विद्वान थे। सभी विद्वानों ने अपना मत व्यक्त किया।

आचार्यश्री का कहना था कि राजनीतिक और सामरिक स्तर पर फैसले और पहल करना सरकार का काम है। हम उसमें प्रत्यक्ष दखल नहीं दे सकते। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। अपने स्तर पर यह प्रयत्न करें कि देश-समाज भीतर से मजबूत बने। समाज के भीतर आंतरिक शक्ति जगाने का काम राजसत्ता का नहीं है। उस मोर्चे पर धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं को सक्रिय होना चाहिए। धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में काम कर रही संस्थाएँ ऐसे क्रियाकलाप चलाएँ, जिनसे उनके भीतर आत्मविश्वास उत्पन्न हो। वे अपने आप को संस्कारित करें और ऐसी रीति-नीति अपनाएँ, जिनसे व्यक्ति बिना किसी का मुखापेक्षी हुए अपने सुदृढ़ समाज के लिए स्वयं उत्तरदायी सिद्ध हों। गोष्ठी में व्यक्त किए ये विचार वहाँ बोलने वाले अन्य वक्ताओं को भी उद्वेलित कर गए।

नए युग का अभिवादन

आचार्यश्री के अनुसार सृजन के विभिन्न मोर्चों पर आरंभ का यह सबसे अच्छा समय था। समाज का आत्मविश्वास लड़खड़ा रहा हो तो शैक्षिक और आध्यात्मिक उपाय किए जाने चाहिए। तपोभूमि में इस बीच पाँच कार्यकर्त्ता अपने क्षेत्र में वापस लौट गए थे। इन लोगों ने पाँच साल पहले आत्मदान किया था। शंभू सिंह कौशिक, गिरजा सहाय व्यास और चमन लाल गौतम को आचार्यश्री ने यह कहकर बाहर भेज दिया था कि क्षेत्रों में केंद्र बनाएँ। ये केंद्र क्षेत्रीय संस्थान के रूप में काम करें। शंभूसिंह कौशिक को कोटा में केंद्र बनाने के लिए कहा गया। बिलासपुर में गिरजा सहाय व्यास और बरेली में चमन लाल गौतम को दायित्व सौंपा गया। भगवान सहाय वसिष्ठ और बालकृष्ण अग्रवाल को क्रम से जयपुर और झाँसी के आस-पास का दायित्व दिया गया। इन कार्यकर्त्ताओं ने अक्टूबर, १९६२ से वर्षांत तक सैकड़ों जगह कार्यक्रम संपन्न करा लिए थे। जयपुर में

चंद्रमुखी रस्तोगी और इंद्रसिंह शेखावत ने अपने क्षेत्र में यज्ञीय अभियान छेड़ दिया था। पिछले एक वर्ष से चल रही इन गतिविधियों ने अच्छा प्रभाव जमा लिया था।

यज्ञ-आयोजनों के अलावा गायत्री तपोभूमि में स्वास्थ्य और साधना शिविर भी लगे। उनमें साधकों की संख्या दिनोदिन बढ़ने लगी। क्षेत्र में संगठन और प्रचार की गतिविधियाँ चलने लगीं। इसके लिए शाखाओं में गायत्री परिवार के सदस्यों का रजिस्टर रखने, साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक सत्संग चलाने, शरीर स्वास्थ्य-संवर्द्धन के लिए अभ्यास-कक्षाएँ लगाने के अलावा वर्ष में कम से कम दस त्योहार मनाने के निर्देश दिए गए। भारतीय धर्मपरंपरा और समाज में उत्सवों की संख्या इतनी ज्यादा है कि उनका हिसाब लगाना और अंतर्कथाएँ संगृहीत करना दुष्कर कार्य है।

इनमें नब्बे प्रतिशत पर्व क्षेत्रीय, जातीय वर्ग विशेष तक ही सीमित हैं। आचार्यश्री ने दस ऐसे पर्वों का चुनाव किया, जो सार्वजनीन थे। पूरे देश में नहीं मनाए जाते थे तो भी एक बड़ा समुदाय इन उत्सवों को मनाता था। ऐसे दस पर्वों में श्रावणी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीवाली, वसंत पंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयंती और गुरु पूर्णिमा के नाम थे। आश्विन और चैत्र के नवरात्रों को भी उत्सव और साधना पर्व के रूप में सम्मिलित किया गया।

धार्मिक वातावरण में होने वाले कार्यक्रमों में एक व्यवस्था संस्कारों को लेकर भी थी। शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान किया गया है। किसी समय हो सकता है सभी संस्कार कराए जाते हों, लेकिन इन दिनों संस्कार—नामकरण, अन्नप्राशन, विवाह उसके बाद अंत्येष्टि तक ही सीमित रह गए हैं। उनमें भी नामकरण और अन्नप्राशन का लोप हो गया है। आचार्यश्री ने सोलह में से दस संस्कार चुने और उन्हें लोकप्रिय बनाने का कार्यक्रम दिया। इन कार्यक्रमों में पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारंभ, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ, अंत्येष्टि और मरणोत्तर संस्कारों को लोकप्रिय बनाने पर जोर दिया। सोलह में से दस संस्कार चुनने के लिए आचार्यश्री का कहना था कि सभी संस्कार आवश्यक हैं। मनुष्य की चेतना और प्रकृति पर उनका प्रभाव पड़ता है, लेकिन अभी हम दस संस्कारों को ही चुन रहे हैं। उन्हें मनाना सुविधाजनक है। फिलहाल उन्हें ही पुनर्जीवित किया जाए।

गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं को स्थानीय स्तर पर कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों की जिम्मेदारी भी सौंपी गई। इन जिम्मेदारियों में शिक्षा का प्रचार, स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था और लोक-शिक्षण की गतिविधियाँ चलाने के लिए कहा गया।

कार्यक्रमों या घोषणाओं को आचार्यश्री ने नए युग के निर्माण का अभिवादन कहा था। अभिवादन शब्द प्रयोग करने की दृष्टि यह थी कि नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वातावरण में बदलाव तो आना ही है। उस परिवर्तन में सहयोगी बनकर नए युग का स्वागत किया जाए। अपनी ओर से कुछ प्रयत्न कर लिए जाएँगे तो स्वयं को अनुगृहीत और धन्य अनुभव किया जा सकेगा। यह धन्यता का बोध हर किसी को अनुभव करना चाहिए। गायत्री-उपासकों को तो निश्चित ही।

जीव पहले अज्ञानी बना रहता है। ईश्वर बुद्धि नहीं रहती, वरन नाना वस्तुओं की बुद्धि, अनेक चीजों का बोध रहता है। जब ज्ञान होता है, तब उसकी समझ में आता है कि ईश्वर सभी भूतों में है। जिस प्रकार पैर में काँटा चुभता है तो एक और काँटे को ढूँढ़कर उससे वह काँटा निकाला जाता है, अर्थात ज्ञानरूपी काँटे के द्वारा अज्ञानरूपी काँटे को निकाल बाहर करना। फिर विज्ञान होने पर अज्ञान-काँटा और ज्ञान-काँटा, दोनों को ही फेंक देना। उस समय केवल दर्शन ही नहीं, वरन ईश्वर के साथ रात-दिन बातचीत चलती रहती है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी — २

मनुष्य शरीर की वास्तविक संपदाएँ

(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव मनुष्य को ईश्वर का वरिष्ठ राजकुमार बताते हुए कहते हैं कि दुर्लभ संपदाओं से संपन्न मनुष्य को सामान्य क्रम में समस्याओं से ग्रस्त नहीं होना चाहिए। भगवान ने मनुष्य को अपना बेटा मानकर अनेकानेक विभूतियों से सुसज्जित किया है, परंतु इसके बाद भी मनुष्य हैरान-परेशान नजर आता है, इसका एक ही कारण है और वह है—असंयम। मनुष्य की बीमारियों का प्रमुख कारण पूज्य गुरुदेव संयम के अभाव को बताते हैं और ये कहते हैं कि असंयमी होने से ही मनुष्य श्रमशीलता खोता है, विलासी बनता है और नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त होता है। गुरुदेव संयम को अध्यात्म विद्या का प्रथम सोपान घोषित करते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

भगवान के सिद्धांतों को न मानने वाले हैं—नास्तिक

मित्रो! असल में नास्तिक हम और आप हैं, हम भगवान के विधि और विधानों के बारे में इनकार करते हैं और एक नया सिद्धांत यह मानकर चलते हैं कि अध्यात्म एक जादू है। अध्यात्म माने जादू, मैजिक और मैजिक माने अध्यात्म। हमारी और आपकी यही परिभाषा है। वस्तुतः नास्तिकवाद को हमने और आपने फैलाया है। कैसे? अध्यात्म क्या हो सकता है? अध्यात्म एक जादूगरी का नाम है। जादूगरी किसे कहते हैं? मिट्टी हाथ में रखते हैं और जादू करते हैं और रुपया हाथ में आ जाता है। यह क्या हो गया? जादू हो गया। हम आपको एक और जादू बता सकते हैं। हाँ साहब! बताइए? अच्छा, देख! पच्चीस पैसे का एक हनुमान जी ला। पच्चीस पैसे की एक माला ला। और क्या लाऊँ? पाँच पैसे का हनुमान चालीसा और धूपबत्ती ला। धूपबत्ती जला, हनुमान चालीसा पढ़, माला घुमा। साहब! अब क्या होने वाला है? अब फायदा होने वाला है। पैसा, बेटा, घर, लक्ष्मी—सब फायदे होने वाले हैं। यह क्या हो गया? जादू हो गया।

मित्रो! यह एक खालिस जादू है। जादू किसे कहते हैं? जिसमें आदमी को मशक्कत नहीं करनी पड़ती; मेहनत नहीं करनी पड़ती; कीमत नहीं चुकानी पड़ती। इसमें सात्त्विकता का विकास नहीं करना पड़ता। थोड़ी-सी हेरा-फेरी करने से वह लाभ मिल जाता है। अगर यह बातें सही हैं, तो ऐसे अध्यात्म को मैं सिर्फ जादू कह सकता हूँ। यह जादू है। ऐसा अध्यात्म फिलॉसफी नहीं हो सकता। फिलॉसफी वह हो सकती है, जो हमारे इसी जीवन में हमारी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सके।

नकद धर्म है अध्यात्म

मित्रो! अध्यात्म नकद धर्म होना चाहिए और वह ऐसा होना चाहिए, जो हमारे इसी जीवन में हमारी हर समस्या का समाधान करने में समर्थ हो। जब हमारे जीवन में अध्यात्म आएगा, तो एक नए दृष्टिकोण के तरीके से आएगा। यह अध्यात्म 'एप्लाइड' होगा। अध्यात्म के सिद्धांतों को, जिनको हम उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कृतित्व कह सकते हैं, यह जिस भी क्षेत्र में प्रयुक्त होगा, जहाँ भी एप्लाई होगा, वहाँ उसके तरीके अलग-अलग हो जाएँगे।

मित्रो! अगर आप आध्यात्मिक होंगे और अपने शारीरिक क्षेत्र में उस अध्यात्म का प्रयोग करना चाहेंगे, तो उसके लिए आपको संयम के आधार पर प्रयोग करना पड़ेगा। संयम का प्रारंभ कहाँ से करना पड़ेगा? अपनी जबान के ऊपर काबू करना पड़ेगा। हथौड़ी से, कैंची से और प्लास से उस जीभ को मरोड़ देना पड़ेगा। जीभ बहुत शैतानी करती है। जो चीज हमारे खाने की नहीं है, वह हमको खिलाना चाहती है। सिगरेट हमारे किसी काम की नहीं है, फिर भी वह हमें पिलाना चाहती है। मिर्च, जिसको हम बच्चे के मुँह पर जरा-सी लगा देते हैं, तो वह सी-सी करता हुआ, मुँह से लार टपकाता हुआ रोता फिरता है, तब घी लगाना पड़ता है। जो चीज हमारे लिए जहर के बराबर है, तेजाब के बराबर है, जीभ हमें वही खिलाना चाहती है। अच्छा, ठहर जा! हम तेरी अभी पिटाई करते हैं।

अध्यात्म का अर्थ है—शूरवीरता

मित्रो! इसको अध्यात्म में क्या कहते हैं? बहादुरी। अध्यात्म का नाम है—बहादुरी, शूरवीरता, जिसमें कि आदमी को लड़ाई लड़नी पड़ती है। किसके साथ? अपने आप के साथ लड़ना पड़ता है। जिस काम में पहले लड़ाई करनी पड़ती है, उस चीज का नाम अध्यात्मवाद है। अध्यात्मवाद बहादुरों का रास्ता है, शूरवीरों का रास्ता है, संघर्षशीलों का रास्ता है। यह कायरों का, चोरों का, जेबकटों का, उठाईगीरों का रास्ता नहीं है, जैसे कि हम और आप हैं, उठाईगीर हैं, जो हराम का वरदान, हराम का आशीर्वाद, हराम की सिद्धियाँ, हराम के चमत्कार पाना चाहते हैं। हमको और आपको जेबकटों की संज्ञा में रखा जा सके, तो कोई गलत बात नहीं है।

मित्रो! आप कहेंगे कि सच्चा अध्यात्मवाद क्या हो सकता है और इसका क्या फल मिल सकता है? बेटे! सच्चे अध्यात्मवाद का फल मिलना चाहिए और उसी कीमत पर मिलना चाहिए। जब हम अध्यात्मवादी होंगे, तो पहले-पहल हमें अपनी दो इंद्रियों से, अपने आप से लड़ाई लड़ने के लिए कमर बाँधकर खड़ा होना पड़ेगा। दुश्मनों के साथ, रावण और कुंभकरण के साथ लड़ने के लिए जिस तरह से रामचंद्र जी खड़े हो गए थे और दुःशासन और दुर्योधन के साथ लड़ने के लिए श्रीकृष्ण जी और अर्जुन खड़े हो गए थे। ठीक उसी तरह हमको दो इंद्रियों से, अपने आप से लड़ाई लड़ने के लिए कमर कसकर खड़ा होना होगा। इसके लिए हमें दो दुश्मनों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देनी चाहिए कि हमारा इनसे समझौता नहीं हो सकता और हम इनसे लड़ाई लड़ेंगे। इनसे हमारा कोई राजीनामा नहीं हो सकता। इनकी बात को हमको नहीं मानना चाहिए। इनको हम गिराकर रहेंगे। इनको हम मिटाकर रहेंगे।

असंयम के दो आधार—आहार और विहार

मित्रो! कौन-कौन सी चीजें हैं, जो असंयम के आधार पर हमारी जिह्वा पर हावी होती हैं? वे हैं—हमारे आहार और विहार। इनको हम कामेंद्रिय और जिह्वा-इंद्रिय की शैतानी कह सकते हैं। जिह्वा-इंद्रिय की शैतानी को अगर आप ठीक कर सकते हों, तो आपको वहाँ चलना पड़ेगा। मैं आपको इस संबंध में एक गवाही पेश करना चाहूँगा—गांधी जी की। उन दिनों गांधी जी की उम्र 20 से 30 साल के बीच थी और वे नेटाल, दक्षिण अफ्रीका में थे। यंग इंडिया में उनके लेख छपते थे। एक लेख में उन्होंने लिखा कि मैं कॉन्स्टीपेशन का इतना बड़ा मरीज था कि एनीमा लिए बिना मुझे एक भी दस्त नहीं होता था। 25 से 30 साल की उम्र तक उन्होंने रोजाना एनीमा लिया। कोई कहता कि हकीम जी की दवा खाइए, कोई कहता कि ईसबगोल की भूसी खाइए, त्रिफला चूर्ण खाइए, दस्त साफ हो जाएगा।

गांधी जी ने कहा कि पेट के ऊपर जुल्म करने से कोई फायदा नहीं। इस पेट को, जिसको हमने जुल्म करते-करते तहस-नहस कर दिया है, अब इसको हमको राहत देनी चाहिए। इसकी मदद करनी चाहिए। सबसे पहला काम यह किया कि उन्होंने ब्रेकफास्ट लेना बंद कर दिया। उस जमाने में इंग्लैंड में एक हवा चली थी—ब्रेकफास्ट की। उसकी हवा गांधी जी के पास भी आई। उन्होंने कहा कि सेहत की तबाही करने वाली आदमी की बुरी एक आदत है—ब्रेकफास्ट।

गांधी जी से सीखें संयम

अतः नाश्ता बंद करना चाहिए। हम जो भोजन करते हैं, वह रात से सवेरे तक पेट में पचा हुआ पड़ा रहता है। बहुत देर तक वह हजम नहीं हो पाता। इसलिए सवेरे पेट को मौका देना चाहिए कि वह उतने समय तक राहत पा ले। जागने के बाद हम सो जाते हैं। उस समय हमारा पाचनतंत्र कमजोर पड़ जाता है। पेट में से रस निकलना कम हो जाता है। इसलिए सवेरे जब हम सोकर उठते हैं, टट्टी जाते हैं, तब भी पेट में कमी रह जाती है। अतः हमको इतना टाइम मिलना चाहिए कि दोपहर को 12

बजे तक, ११ बजे तक, १० बजे तक शाम का भोजन हजम हो जाए। इसके बाद हम भोजन करें।

इसलिए गांधी जी ने कहा कि ठीक है, अब सवेरे का नाश्ता बंद। सवेरे वाला नाश्ता उन्होंने बंद कर दिया। बाकी उनके सारे प्रयोगों को मैं कहाँ से बताऊँगा। गुजराती में लिखी हुई उनकी पुस्तक जो कि हिंदी में 'आत्मकथा' नाम से छपी है, आप उसे कभी भी पढ़ सकते हैं और उसमें वह हिस्सा भी पढ़ सकते हैं, जो खुराक के बारे में और सेहत ठीक करने के बारे में उन्होंने अपने-आप के साथ में इस्तेमाल किया। गांधी जी का ख्याल था कि मेरे लिए पचास वर्ष की उमर पकड़ना मुश्किल है और मैं पचास साल तक जिंदा नहीं रह सकता। 96 पौंड का आदमी, भरी जवानी में कॉन्स्टीपेशन का मरीज और कितनी तरह की बीमारियों का मरीज कैसे जिंदा रह सकता था!

शरीर है देवताओं का मंदिर

मित्रो! उन्होंने जबान के विरुद्ध लोहा लेने की ठान ली। उन्होंने कहा कि हम अपनी जीभ का कहना नहीं मानेंगे और उन्होंने जीभ से लड़ाई की घोषणा कर दी, वॉर डिक्लेयर कर दिया। आज से हमारी दुश्मनी शुरू हो गई और हम उस बैरी से मुकाबला करेंगे। उससे हमारा कोई कंप्रोमाइज नहीं हो सकता। जब से उन्होंने जीभ के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया, उनकी गई-गुजरी सेहत फिर से वापस आना शुरू हो गई। अस्सी वर्ष की उम्र में वे यह कहते पाए गए कि अगर मुझे मौका मिला तो मैं एक सौ वर्ष जिऊँगा। क्यों? उन्होंने किसकी उपासना की थी? किसकी सिद्धि की थी? यह किसका चमत्कार था? बेटे! यह शरीर का चमत्कार है, जिसको हम देवताओं की भूमि कहते हैं, देवताओं का मंदिर कहते हैं। देवताओं के इस मंदिर की ठीक तरीके से पूजा करने में हम समर्थ हो सकें, उसकी उपासना हम सही ढंग से कर सकें, तो यह देवता हमको सेहत का वरदान दे सकता है और हमारी सेहत वापस लौटाई जा सकती है।

मित्रो! अगर हम अपनी सेहत की सही तरीके से रखवाली करना चाहें तो हमको अपनी कामेंद्रियों के ऊपर संयम करना चाहिए। कामेंद्रियों के ऊपर अगर संयम कर सकते हैं तो वह तत्त्व, जो हमारे दिमाग में याद्दाश्त के रूप में काम करता है, वह जो हमारी काया में मैग्नेट के रूप में, ओजस्, तेजस् के रूप में काम करता है और हमारी नसों में, नर्वस सिस्टम में और हमारे ब्रेन में बिजली की तरह से कड़कता रहता है, वह जो हमारी आत्मा में टार्च के तरीके से जलता रहता है, जो हमारी जबान में से बादलों के तरीके से गरजता रहता है और हमारे दिमाग में न जाने क्या-क्या बन करके चलता रहता है, जो हमारी रीढ़ की हड्डियों के मध्य में कुंडलिनी शक्ति बनकर खड़ा रहता है—इन सारी की सारी शक्तियों का अगर हमको बचाव करना है, तो हमको अपना तेजस् गंदी नालियों में बहाने से बाज आना चाहिए।

सेहत हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

मित्रो! आपको अपने-आप के विरुद्ध लड़ाई कर देनी चाहिए कि हम आपका कहना नहीं मानेंगे। विभीषण के तरीके से, प्रह्लाद के तरीके से आप लड़ने के लिए खड़े हो जाइए। भरत के तरीके से कैकेयी से लड़ने के लिए खड़े हो जाइए। इनकार करना सीखिए। अगर आप इनकार करना शुरू कर दें, तो मैं समझता हूँ कि साधना का पहला चरण प्रारंभ हो गया और आपको उसके परिणाम मिलने चाहिए। मित्रो! हमारे आहार-विहार के संबंध में असंयम बढ़ता गया और यही असंयम हमारे शरीर को नष्ट करने के लिए उत्तरदायी है। अगर हम इस उत्तरदायित्व को पूरा करने में समर्थ हों, तो मैं आप से कह सकता हूँ कि प्रकृति—नेचर हमको अच्छी सेहत के रूप में वरदान देगी। अच्छी सेहत हर आदमी का जन्मसिद्ध अधिकार है।

मित्रो! लोकमान्य तिलक ने कहा था—"स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" और मैं आपसे यह कहता हूँ—"सेहत हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।" और हमको अच्छी सेहत मिलनी चाहिए। हमारी तंदुरुस्ती मिलनी चाहिए। हमें अपनी तंदुरुस्ती की किसी भी समस्या को चुनौती देनी चाहिए; क्योंकि हमें तंदुरुस्त रहने के लिए भेजा है। यह कैसे हो सकता है? बेटे! बताता हूँ। हाँ, महाराज जी! वह मंत्र बता दीजिए? कौन-सा मंत्र बता दूँ तुझे? महाराज जी! ऐसा मंत्र बता दीजिए, जिससे बीमारी अच्छी हो जाए। बेटे! तू समझता तो है नहीं कि मंत्र किसे कहते हैं? मंत्र कहते हैं—विचारों को। तीखे वाले विचार, गहरे वाले विचार, सिद्धांतवादी विचार, आदर्शवादी विचार, जिनके अंदर गहराई हो। उन चीजों को हम विचार कह सकते हैं, उनको हम मंत्र कह सकते हैं, जिनमें गहराई हो। जिसके पीछे कोई जड़, पूँछ नहीं होती, उसको हम कल्पना कहते हैं।

किसे कहते हैं मंत्र ?

मित्रो! आप विचार करते रहते हैं और प्लानिंग करते रहते हैं कि बड़े हो जाएँगे, तो हम अपने लड़के को एम० बी० बी० एस० कराएँगे। अपनी लड़की को डॉक्टर बनाएँगे। हाँ साहब! ठीक है, बनाना, लेकिन आप क्या काम करते हैं ? प्राइमरी स्कूल के मास्टर हैं। क्या तनख्वाह मिलती है? ढाई सौ रुपये महीने मिलती है। अच्छा! लड़की को जब एम० बी० बी० एस० में भरती कराएगा, तो जो फीस लगेगी, वह कहाँ से आएगी ? क्या भगवान भेज देगा ? फिर क्यों कहता है कि डॉक्टर बनाएगा ? फिर यों कह कि भगवान जो चाहेगा, सो बनाएगा। यह क्या है ? कल्पना। जिनके पीछे कोई प्लानिंग नहीं होती, कोई तैयारी नहीं होती, वे विचार कहलाते हैं। और मंत्र किसे कहते हैं ? मंत्र उसे कहते हैं, जिसमें संकल्प जुड़े हुए होते हैं, निष्ठाएँ जुड़ी हुई होती हैं, साहस जुड़ा हुआ होता है, हिम्मत जुड़ी हुई होती है, दिशाएँ जुड़ी हुई होती हैं, सिद्धांत और आदर्श जुड़े होते हैं। उन विचारों का नाम मंत्र है।

मित्रो! मंत्र उन्हें नहीं कहते हैं, जैसे कि आपने अक्षरों के थोड़े-थोड़े टुकड़ों को जोड़-काटकर बना लिया है और इसके अक्षरों को घुमा देने को अनुष्ठान कहते हैं। यह नहीं हो सकता। मंत्र के अनुष्ठान का मतलब है—श्रेष्ठ विचार, आदर्श विचार, ऊँचे विचार, संकल्पयुक्त विचार, सही विचार। ऐसे विचार, जिनको क्रियान्वित किए बिना हम रह ही नहीं सकते, उन्हें मंत्र कहते हैं। ऐसे मंत्र जादू दिखा सकते हैं और चमत्कार दिखा सकते हैं। मंत्रों ने चमत्कार दिखाया है। कल मैं आपको कुछ नाम बता रहा था। उनमें से एक चंदगीराम पहलवान का नाम बता रहा था कि बाईस साल की उम्र में टी० बी० का मरीज बना मरने के लिए खड़ा हुआ था। फिर वह पहलवान हो गया। यह मंत्र का चमत्कार था।

सिद्धांतों, आदर्शों के क्रियान्वयन का नाम है—मंत्र

मित्रो! मंत्र उसे कहते हैं, जिसमें आदमी सिद्धांतों के आधार पर, आदर्शों के आधार पर प्लानिंग करता है, योजना बनाता है। सिद्धांतों के आधार पर बनाई गई योजना को क्रियान्वित करने के लिए वह इस तरीके से खड़ा हो जाता है, जैसे कि अंगद ने रावण की सभा में पाँव गाड़ दिया था और कहा था कि उखाड़ हमारा पैर। गुरु जी! एक बार हमने संकल्प किया था कि बीड़ी नहीं पिएँगे, लेकिन हमसे रहा नहीं गया और हमने बीड़ी पी ली। बेटे! फिर तेरा संकल्प क्या रहा, वह तो कल्पना मात्र रह गया। आपने संकल्प किया था कि हम बीड़ी नहीं पिएँगे, लेकिन आपकी कल्पना ने साथ नहीं दिया। आपके संकल्प ने साथ नहीं दिया। बेटे! संकल्प उसे कहते हैं कि आदमी की नस-नस उसी ढाँचे में ढलती हुई चली जाती है।

मित्रो! हमारे एक बड़े भाई थे। हुक्का पीने के इतने ज्यादा आदी थे कि रात में भी कितनी बार उठते थे। उनका हुक्का भरा हुआ रखा रहता था और जला रहता था। सारे दिन हुक्का चलता था। दिन-रात में चौबीस घंटे

एक बार एक गणमान्य सेठ महामना मालवीय जी के पास प्रीतिभोज में सम्मिलित होने का निमंत्रण देने पहुँचे। महामना जी उनसे विनम्र स्वर में बोले—"सेठ जी! ये आपका प्रेम है कि आप स्वयं इस आमंत्रण को लेकर आए, परंतु जब तक मेरे देश के लाखों भाई-बहन भूखे हैं, तब तक मैं किस तरह बड़े-बड़े भोजों में सम्मिलित हो सकता हूँ!" मालवीय जी की बात सुनकर सेठ जी इतने द्रवित हुए कि उन्होंने प्रीतिभोज में व्यय होने वाला सारा धन गरीबों में दान कर दिया। ऐसे थे महामना मालवीय जी।

में चौबीस बार तो वे अवश्य हुक्का पीते थे। सब मिलाकर रात को जब सो जाते होंगे, तब की बात अलग है, लेकिन जब तक जागते रहते थे, चेन स्मोकर की भाँति बराबर उनका हुक्का चलता रहता था। एक दिन ऐसा हुआ कि गाँव के ही एक बिरादरी वाले कोई आदमी आए। गाँव में हुक्का पीने की आदत जो है। एक चिलम लगानी होती है। बस, तू भी पी---तू भी पी।

एक आदमी आया। उसने हुक्का पिया कि उसे खाँसी आ गई। खाँसी के साथ कफ भी हुक्के में जा गिरा। बस, भाई साहब जब हुक्का पीने गए तो उसमें

देखा कि आदमी का थूक भरा हुआ था, कफ भरा हुआ था। उनको ऐसी घृणा आई कि हुक्के को लेकर के गए और एक पत्थर पर दे मारा। पीतल वाला नीचे का जो हिस्सा था, वही बच गया, जिसे घर वाले ले आए। बाकी सब तोड़कर फेंक दिया। फिर क्या हुआ? ५६-५७ वर्ष की उम्र में लोगों ने देखा कि फिर उन्होंने कभी भी हुक्के को नहीं छुआ। लोगों ने कहा भी कि लीजिए हुक्का पीजिए, चिलम पीजिए, लेकिन वे उठकर वहाँ से चल देते थे, दूर चले जाते थे।

जीवन बदल दे, वह है संकल्प

मित्रो! संकल्प इतना तीव्र होता है, इतना प्रभावी होता है कि आदमी की धाराओं को बदल देता है। जीवन की क्रियाओं को उलट देता है। इसी मंत्र का अनुष्ठान करने के लिए हमने आपको बुलाया है। हमने आपको गायत्री मंत्र का अनुष्ठान करने, उस मंत्र का आह्वान करने के लिए बुलाया है, जो आदमी के संकल्पों को तीव्र बना देता है। यहाँ से जो कुछ विचार ले करके आप जाएँगे कि यह कैसे पूर्ण हो सकता है? हम अपने वचन से पीछे नहीं हटेंगे। कैसे—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

पंद्रह मिनट भजन करेंगे, फिर कहेंगे कि मन नहीं लगता। अच्छा! भजन में मन नहीं लगता। अच्छा! खाना खाने में तेरा मन लगता है? हाँ, साहब! लगता है। खाना बंद कर दें तब? अरे साहब! चाय का वक्त हो गया है। चुप। खाने का वक्त हो गया। चुप।

मन को काबू में लाने की प्रक्रिया का नाम है—मंत्र

चल पहले भजन कर, फिर देख कि मन लगता है कि नहीं लगता। मन ही सब कुछ हो गया। मन ही हमारा मालिक हो गया। जो हमको रास्ते पर चलाएगा। हाँ, साहब! मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता। किसी में तेरा मन लगता है? बेटे! मन को लगाना पड़ेगा। जिस तरीके से सर्कस के जानवरों को हंटर मार-मारकर के काबू में लाया जाता है और उनको तमाशा दिखाने के लिए मजबूर किया जाता है, उसी प्रकार से अपने मन को पीटना पड़ेगा। आपके मन को, आपके स्वभाव और चित्तवृत्तियों को हंटर मार-मारकर के जिस प्रक्रिया के द्वारा काबू में लाया जाता है, उस चीज का नाम मंत्र है।

मित्रो! हमने आपको अनुष्ठान में मंत्र की उपासना करने के लिए बुलाया है। अगर आप अपने जीवन में, अपने शरीर में मंत्र का प्रयोग कर सकते हों, शरीर के लिए एप्लाई कर सकते हों और अपने आहार एवं विहार के बारे में संयम के माध्यम से जीवनयापन कर सकते हों, तो मैं आपको आश्वासन दे सकता हूँ, वरदान दे सकता हूँ, आपके साथ में इकरारनामा कर सकता हूँ कि आपकी सेहत ठीक रहेगी।

आपने अब तक जो गलतियाँ की हैं, ठीक हैं, पर आगे के लिए योजना बनाकर ले जाएँ कि आगे हम ऐसी गलती नहीं करेंगे और अपनी सेहत के नियमों का पालन करेंगे। प्रकृति के अनुयायी बनकर रहेंगे। प्रकृति की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करेंगे। तो हमारा आशीर्वाद आपके लिए दाहिने हाथ पर रखा हुआ है। आप यकीन दिलाइए, कसम खाइए और मंत्र लीजिए और उसके बदले में हमसे आप सेहत का वरदान लेकर के जाइए। अगर हम आपको वरदान न दें, तो फिर आप जो चाहें हमको सजा दे सकते हैं। हम तो बार-बार यही कहते हैं कि आप आइए और मंत्र का चमत्कार देखिए।

कहाँ से आती हैं विकृतियाँ?

मित्रो! विकृतियाँ कहाँ से पैदा होती हैं? हमारे शरीर के बाद दूसरी चीज है—हमारा दिमाग, जो बीमारियों से घिरा हुआ है। हमारा एक और दूसरा शरीर भी है, जिसको हम सूक्ष्मशरीर कहते हैं। वह और भी अधिक बीमार पाया जाता है। शरीर की बीमारियाँ तो दिखाई पड़ती हैं। हकीम जी को दिखाई पड़ती हैं। हकीम जी! देखना क्या बात है? आपको तो ९९.५ डिगरी सेल्सियस बुखार है, टेंपरेचर है। इसको आप दवाई देकर ठीक कर सकते हैं।

लेकिन दूसरी बीमारियाँ हैं, जो बेचारे हकीम जी को भी हमारी ही तरह से खाए जा रही हैं। वे कौन-सी हैं? वे हमारी दिमागी बीमारियाँ हैं। लोग थोड़ी-सी बीमारियों की बाबत जानते हैं। दिमाग में क्या-क्या बीमारियाँ होती हैं? मेंटल हॉस्पिटल में साइकोलॉजी की जिन थोड़ी-सी किताबों में मेंटल बीमारियों का जिक्र आया है, हम उसी के माध्यम से और मेंटल साइंस के माध्यम से पागलपन, सनक आदि बीमारियों के बारें में जान सकते हैं। लेकिन बहुत-सी ऐसी बीमारियाँ हैं, जिन्हें हम समझ ही नहीं पाते।

(क्रमशः)

अनूठे विश्वविद्यालय की अनूठी परिवीक्षा

विश्वविद्यालय परिसर में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को यहाँ की अनूठी परिवीक्षा-प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। यहाँ के शिक्षण की असली कसौटी परिवीक्षा ही है, जिसे पूरा करने के उपरांत ही विद्यार्थी उत्तीर्ण माना जाता है। परिवीक्षा विश्वविद्यालय की शिक्षण-प्रक्रिया का एक अनिवार्य और अत्यन्त व्यावहारिक पक्ष है। विद्यार्थी किसी भी शैक्षिक संस्थान में जाकर कागज की डिग्रियाँ, प्रमाणपत्र आदि तो प्राप्त कर सकता है और इन कागजों के माध्यम से अपनी प्रतिभा को भी साबित कर सकता है, परंतु चिंतन, चरित्र और व्यवहार के द्वारा एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में विद्यार्थी स्वयं को गढ़ पाया है या नहीं, यह मूल्यांकन इस विश्वविद्यालय की परिवीक्षा के द्वारा ही संभव हो पाता है। दूसरे अर्थों में, इस परिसर में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी की सच्ची परीक्षा यह परिवीक्षा ही है। शिक्षा, ज्ञान, कौशल चाहे जितना भी हो; किंतु यदि वह व्यावहारिक न हो, स्वयं और समाज-राष्ट्र के लिए उपयोगी न हो तो उसका कोई मूल्य नहीं होता।

स्वयं का पेट भरने और जीवन-निर्वाह करने तक का पुरुषार्थ तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं, परंतु मनुष्य का स्तर उनसे काफी ऊँचा और श्रेष्ठ है। यदि मनुष्य के रूप में भी हम निजी सुख और स्वार्थ में केंद्रित रहते हैं तो फिर अन्य प्राणियों में और हममें कोई अंतर शेष नहीं रह जाता है। मनुष्य जीवन का सार और सार्थकता तो औरों के हित जीने में है। हमारी पीढ़ी का यह दुर्भाग्य है कि उनकी शिक्षण-प्रक्रिया में जीवन-निर्वाह हेतु उपयोगी शिक्षा-दीक्षा और कौशल तो सिखाया जाता है, परंतु परहित का, लोकसेवा का, दूसरों के लिए उपयोगी बनने तथा त्याग-बलिदान और उत्सर्ग जैसे मानवीय मूल्यों का शिक्षण नहीं कराया जाता।

आज की शिक्षा से स्वार्थवादी और अहंवादी प्रवृत्तियाँ तो फल-फूल रही हैं, किंतु परमार्थ और सेवा-समर्पण की भावना सर्वथा उपेक्षित है। ऐसे में विद्यार्थी जीवन से जुड़े शिक्षा-मूल्यों को परिभाषित करना मुश्किल जान पड़ता है, परंतु अधिक निराश होने की आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि इस दिशा में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने एक अनूठी पहल करते हुए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। शिक्षा के साथ-साथ सेवा और परमार्थ-भावना को विकसित करने वाली परिवीक्षा-प्रक्रिया यहाँ के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित है। यह भी एक सुखद संयोग है कि जीवन के विकास को निर्धारित करने वाली परिवीक्षा जीवन प्रबंधन पाठ्यक्रम का ही एक अंग है।

विश्वविद्यालय की परिवीक्षा-प्रक्रिया के पीछे यह उद्देश्य निहित है कि विद्यार्थी ने अपने अध्ययनकाल में जो कुछ सीखा-समझा है और जो ज्ञान अर्जित किया है, उसका लाभ सारे समाज को मिले और दूसरी ओर विद्यार्थी स्वयं भी अपनी किताबी दुनिया से बाहर आकर, सेवा और सहयोग के द्वारा समाज और राष्ट्र की वस्तुस्थिति से परिचित हो सके। साथ ही इस दिव्य परिसर में सीखी हुई जीवन विद्या को समाज के लोगों के बीच, औरों के हित उपयोग कर, इसे और अधिक निखार-सँवार सके। इस निमित्त विद्यार्थी को परिवीक्षा के अंतर्गत न्यूनतम एक माह क्षेत्र में जाकर अपनी कुशलता का उपयोग करना होता है। इसके लिए प्रत्येक वर्ष सत्र समापन से पूर्व विभिन्न पाठ्यक्रमों के विद्यार्थी छह तक की टोली में, इस परिसर से बाहर निकलकर जनसमाज को अपनी प्रतिभा एवं कुशलता से परिपूर्ण सेवाभावी व्यक्तित्व का परिचय करवाकर वापस लौटते हैं।

परिवीक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत इस वर्ष भी विभिन्न पाठ्यक्रमों के विद्यार्थियों की टोलियाँ क्षेत्रों में भेजी गईं थीं। इस क्रम में २८ फरवरी से २८ मार्च की अवधि में एम०ए०/एम०एस-सी०/डिप्लोमा पाठ्यक्रम के कुल २२५ विद्यार्थियों की ६४ टोलियाँ अपनी परिवीक्षा पूर्ण कर वापस लौटीं। इन टोलियों ने भारत के छह राज्यों एवं नेपाल के दो जिलों में अपनी सेवा प्रदान कर पूज्यवर

के विचारों की अलख जगाई। भारत में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, गुजरात, पश्चिम बंगाल तथा नेपाल के काठमांडू और धनुष्षा में कुल मिलाकर ५६ जिलों में देव संस्कृति के आदर्शों का प्रचार-प्रसार किया गया।

योगविज्ञान, मनोविज्ञान, पत्रकारिता, कंप्यूटर विज्ञान, भारतीय संस्कृति एवं पर्यटन प्रबंधन जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों में निष्णात इन विद्यार्थियों के दल ने विभिन्न शैक्षिक एवं व्यावसायिक संस्थानों, जेल के कैदियों, सेना के जवानों, गाँव के किसानों से लेकर जनसामान्य तक अपना संदेश पहुँचाने का पुरुषार्थ किया है। इनके द्वारा संपन्न कराए जाने वाले बहुआयामी कार्यक्रमों में प्रमुख रूप से योगासन, ध्यान, प्राणायाम, यज्ञ एवं स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से योग चिकित्सा, एक्यूप्रेशर, प्राणिक हीलिंग जैसी वैकल्पिक चिकित्साएँ शामिल थीं। इसके साथ ही मिशन के सप्तसूत्री आंदोलनों को भी इन टोलियों ने गति प्रदान की है। इसके अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण, व्यसनमुक्ति, कुरीति उन्मूलन, नारी जागरण जैसे विचार क्रांति के महत्त्वपूर्ण आयामों से इन्होंने जनसमाज को जाग्रत बनाने का प्रयास किया तथा इसी क्रम में व्यक्तित्व परिष्कार एवं जीवन जीने की कला के विशिष्ट शिविरों के आयोजन भी संपन्न किए।

इसी क्रम में २१ मई से २१ जून की अवधि में छहमासीय प्रमाणपत्र के विद्यार्थियों द्वारा भी भारत के बारह जिलों में जाकर अपनी सेवाएँ प्रदान की गईं। वर्ष २०१४ की जनवरी में बी० एड० पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों द्वारा, फरवरी में बी०ए०/बी०एस-सी०/बी०सी०ए० पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों द्वारा, मार्च में स्नातकोत्तर एवं डिप्लोमा पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों द्वारा तथा मई-जून में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों द्वारा इस परिसर से अपनी परिवीक्षा को पूर्ण किया गया है। इन पंक्तियों का तात्पर्य यह है कि हजारों की संख्या में इन विद्यार्थियों ने अपनी परिवीक्षा के दौरान संपूर्ण भारत के दूर-सुदूर क्षेत्रों तक परमपूज्य गुरुदेव के विचारों एवं विश्वविद्यालय के आदर्शों को पहुँचाने का कार्य किया है।

विद्यार्थी जीवन, छोटी-सी उम्र, इतनी समझ, इतना कौशल और देश-समाज को ऊँचा उठाने के जज्बे को देख वे सभी लोग स्तब्ध रह जाते थे; जहाँ भी ये विद्यार्थी पहुँचते थे। और फिर जिज्ञासा और उत्साहपूर्ण मन से छोटे-बड़े सभी, इन विद्यार्थियों द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भागीदारी करते और सच यही है कि हर कोई किसी-न-किसी तरह लाभान्वित होकर ही लौटता था—जो जिस कारण भी इन विद्यार्थियों के संपर्क में आया हो। इसका श्रेय पूर्णरूपेण उन विद्यार्थियों को जाता है, जो अपने इस परिवीक्षाकाल को पूरी लगन, परिश्रम और कुशलता से पूरा करते हैं। उनके भीतर भी इस गुरुतर कार्य को श्रेष्ठतम रूप से पूरा करने की आतुरता और उत्साह स्पष्ट झलकता है। विद्यार्थियों के स्तर पर ऐसा अनूठा अभियान अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता; क्योंकि ऐसी अनूठी परहित परिवीक्षा का आयोजन इस परिसर द्वारा ही संपन्न कराया जाता है और इसका प्रतिनिधित्व करते हैं—यहाँ के प्रखर विद्यार्थी तथा साक्षी बनते हैं वो लोग, जहाँ भी यह सजग युवाशक्ति कदम रखती है। ❀

बाजीगरों और सिद्धपुरुषों के जीवनक्रम में, स्तर में जो मौलिक अंतर रहता है, उसे पहचानना आवश्यक है। साधना से सिद्धि का तात्पर्य उन विशिष्ट कार्यों से है, जो लोक-मंगल से संबंधित होते हैं और इतने बड़े, भारी तथा व्यापक होते हैं, जिन्हें कोई एकाकी संकल्प या प्रयास के बल पर नहीं कर सकता, फिर भी वे उसे करने का दुस्साहस करते हैं, आगे बढ़ने को कदम उठाते हैं और अंततः असंभव लगने वाले कार्य को भी संभव कर दिखाते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

अपनों से अपनी बात

प्रकाश का ही नहीं, स्वच्छता का भी पर्व है दीपावली

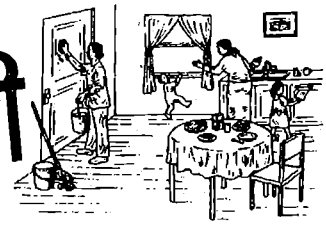

स्वच्छता का पर्व है दीपावली

२३ अक्टूबर, २०१४ गुरुवार को दीपावली है। अपने प्रत्येक पाठक व परिजन को दीपावली के मंगलपर्व पर बधाई व माता लक्ष्मी की कृपावृष्टि की शुभकामनाएँ देते हुए उनसे अपनी बात कहने का मन है। अब जब दीवाली आने में कुछ ही दिन बचे हैं तो निश्चित ही हम सभी को त्योहार की तैयारियों में जुटना है। हर त्योहार की तरह दीवाली की अपनी विशेषता है। महालक्ष्मी के पूजन के साथ इसमें व्यापक साफ-सफाई व स्वच्छता अनिवार्य रूप से जुड़ी है।

अपने देशवासी और दुनिया भर में बसे भारतवंशी इस सत्य से भली भाँति सुपरिचित हैं कि स्वच्छता के बिना कभी भी माता लक्ष्मी की कृपा नहीं मिलती। जहाँ जितनी गंदगी रहती है, वहाँ उतना ही दरिद्रता का वास होता है। जितनी अधिक स्वच्छता उतनी ही अधिक महालक्ष्मी की कृपा। यह बात जितनी अपने घर के संबंध में सही है, उतनी ही अपने गाँव, अपने शहर और अपने देश के बारे में सही है। बात सोचने की है, जब घर हमारा अपना है तो क्या गाँव व शहर हमारे अपने नहीं। क्या हमारा देश—हम सबका अपना नहीं?

यदि देश हमारा अपना है, इसके गाँव व शहर हमारे अपने हैं तो फिर इनकी साफ-सफाई की चिंता भी तो हमें ही मिल-जुलकर करनी है। भारत की गरीबी का ढिंढोरा पूरे देश में-पूरी दुनिया में पीटा जाता है, पर यह बात सोचने की जहमत नहीं उठाई जाती कि देश व देशवासियों से महालक्ष्मी के कुपित होने का कारण कहीं देशव्यापी गंदगी तो नहीं। देश व इसके गाँव व शहरों में साफ-सफाई व स्वच्छता की उपेक्षा ने तो कहीं माता लक्ष्मी को रुष्ट नहीं कर दिया?

आस्थावान भारतवासियों को यह सच समझने की जरूरत नहीं कि यदि स्वयं महालक्ष्मी रुष्ट हों तो फिर सुख व समृद्धि के लिए किए जाने वाले सभी उपाय नाकाम हो जाते हैं। शास्त्र कहते हैं, संत कहते हैं, लोककथाएँ व लोकचर्चाएँ कहती हैं कि महालक्ष्मी पूजन-विधियों से नहीं, बल्कि स्वच्छता से प्रसन्न होती हैं। दीवाली आने वाली है तो इस तथ्य पर न केवल अपने घर के संदर्भ में, बल्कि अपने गाँव, शहर व देश के संदर्भ में विचार करना चाहिए।

विदेशों से वैभव नहीं, स्वच्छता सीखें

परमपूज्य गुरुदेव अपनी वार्ताओं में प्राय: कहते थे कि हम विदेशों में धन-वैभव की चर्चा तो खूब करते हैं, पर वहाँ की साफ-सफाई की चर्चा करना जरूरी नहीं समझते। गुरुदेव का बड़ा स्पष्ट कथन था कि विदेशों के धन-वैभव का एक बड़ा आध्यात्मिक कारण वहाँ की स्वच्छता है। इसी स्वच्छता के कारण माता महालक्ष्मी उन पर कृपावंत हैं। विदेशों खासकर यूरोप, अमेरिका और विकसित देशों में कचरे-कूड़े, गंदगी की सफाई की व्यवस्था बहुत बढ़िया ढंग से होती है।

हर परिवार के पास 'बिंस एंड वेस्ट कलेक्शन विभाग' की ओर से बड़े आकार के तीन वेस्टबिंस खासकर मिले होते हैं। जो घर के बाहर, लॉन में एक ओर या गैरज या मुख्य द्वार के आस-पास कहीं रखे रहते हैं। परिवार स्वयं अपने घर के भीतर रखे दूसरे छोटे कूड़ेदानों में अपने कचरे को तीन प्रकार से डालता है। इसलिए घर के भीतर भी कम से कम तीन तरह के कूड़ेदान होते हैं। एक ऑर्गेनिक कचरा, दूसरा रिसाइकिल हो सकने वाला और तीसरा जो एकदम नितांत गंदगी है, इन दोनों से अलग। हफ्ते में एक सुनिश्चित दिन विभाग की तीन तरह की गाड़ियाँ आती हैं, उससे पहले अपने घर के भीतर के कूड़ेदानों में से निकालकर तीनों प्रकार के बाहर रखे बिंस में स्थानांतरित कर देना होता है, जिसे वे अपने निर्धारित दिन व समय पर ले जाती हैं।

इसके अलावा पुराने कपड़े, बिजली का सामान, पॉलीथीन थैलियाँ, बैटरियाँ और घरेलू वस्तुएँ जैसे—फर्नीचर, टी० वी०, इलेक्ट्रिक सामग्री, जूते, काँच वगैरह को एक निश्चित स्थान पर पहुँचाने की जिम्मेदारी स्वयं नागरिक की होती है। बड़ी चीजों को कचरे में फेंकने के

लिए थोड़ा शुल्क भी देना पड़ता है। इस पूरी प्रक्रिया की वजह से लोगों में कचरे-गंदगी के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता बनी रहती है; जबकि इस बारे में समझने की बात यह भी है कि यूरोप वगैरह के देश ठंढे हैं। वहाँ ठंढक के कारण सड़ने की रासायनिक प्रक्रिया धीमी गति से होती है। इस वजह से वहाँ बदबू व रोगों की आनुपातिक संभावना भी कम रहती है। ऐसा होने के बावजूद विकसित देशों की साफ-सफाई के प्रति यह जागरूकता उनके देश के वातावरण और नागरिकों को ही नहीं, बल्कि प्रकृति व पर्यावरण को भी बहुत संबल देती है।

कम से कम करें गंदगी

हममें से हरेक को यह बात अपने घर के साथ गाँव, शहर व देश के संबंध में सोचनी होगी। हमारे यहाँ तो काफी गरमी पड़ती है, इसलिए गंदगी की सड़न, बदबू व रोगों की संभावना भी बढ़ी-चढ़ी है। इस वजह से हमें स्वच्छता की सीख कहीं ज्यादा जरूरी है। स्वच्छता का सबसे कारगर ढंग होता है कि गंदगी कम से कम की जाए। अगर एक व्यक्ति किसी स्थान पर दिनभर कुछ न कुछ गिराता-फैलाता रहे और दूसरा व्यक्ति पूरा दिन झाड़ू लेकर वहाँ सफाई भी करता रहे, तब भी वह स्थान कभी साफ नहीं हो सकता। इसलिए स्वच्छता का पहला नियम ही यह है कि 'गंदगी कम से कम की जाए।' इसे व्यवहार में लाने के लिए हर नागरिक में स्वच्छता का संस्कार व गंदगी के प्रति वितृष्णा का भाव उत्पन्न होना अनिवार्य है। समृद्धि व संपन्नता की देवी महालक्ष्मी की कृपा पाने की सरलतम साधना भी यही है।

उन्नत देशों में एक छोटा-सा बच्चा भी गंदगी न करने के प्रति इतना सचेत और प्रशिक्षित होता है कि देखते ही बनता है। गुरुदेव ने एक बार अपनी पुरानी यादों को ताजा करते हुए बताया था कि एक बार गायत्री तपोभूमि, मथुरा में उनसे मिलने एक परिवार आया, उनके साथ एक विदेशी परिवार भी था। इस विदेशी परिवार में एक छोटा बच्चा था, लगभग डेढ़ साल का। हिंदुस्तानी परिवार के लोगों ने लापरवाहीवश वहाँ कुछ मिठाई के टुकड़े, फूल की पंखड़ियाँ बिखेर दीं। उस विदेशी बच्चे ने बड़े यत्नपूर्वक इन बिखरी चीजों को उठाया और कमरे से बाहर बरामदे में दूर रखे कूड़ेदान में जाकर डाला, फिर उसने अपने हाथ धोए और वापस आकर गुरुदेव के पास बैठ गया। इस घटना का स्मरण करते हुए गुरुदेव ने कहा था—"अपने परिवेश के प्रति ऐसी चेतना भारतीय जनमानस में नाममात्र की है। इसे व्यापक बनाने की जरूरत है।"

अपने यहाँ गंदगी तो परिवार व समाज का हर सदस्य धड़ल्ले से फैला सकता है, लेकिन सफाई का दायित्व प्रायः गृहणियों और सफाई कर्मचारियों का होता है। इसलिए सबसे पहले भारत देश के हर गाँव, हर शहर के हर घर में स्वच्छता की जागरूकता पैदा करनी होगी। सभी को बताना होगा कि स्वच्छता के बिना सुख-समृद्धि व आरोग्य की आशा व्यर्थ है। इसके बिना माता लक्ष्मी का पूजन भी व्यर्थ है। सभी को यह बात समझनी व समझानी होगी कि स्वच्छता सफाई करने से होती है। अपने बच्चों को यह संस्कार बचपन से देना होगा कि स्वच्छता गंदगी न करने से होती है। स्वच्छता करना और गंदगी न करना एकदूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे को पूर्णता नहीं मिल सकती।

विकसित देशों में जिस व्यवस्था, सफाई, हरीतिमा, पर्यावरण की शुद्धता वगैरह की प्रशंसा होती है, उसका आकर्षण कहीं न कहीं हम भारतवासियों के मन में भी है। फिर भी हम भारत के लोग विदेशों में बसने के बावजूद अपने अभ्यास के चलते वहाँ की सुचारु व्यवस्था को लुके-छिपे बिगाड़ने का प्रयास करते रहते हैं। कमोबेश एशियावासियों की यही और एक जैसी स्थिति है। ये लोग सार्वजनिक रूप से भले ही व्यवस्था भंग करने का दुस्साहस नहीं करते, लेकिन अपने देश लौटने पर फिर आचरण में वही ढिलाई बरतते हैं। ऐसे में भला अपने इन भारतवासियों पर माता महालक्ष्मी प्रसन्न हों भी तो कैसे?

जरूरी है कि बदलें हम अपनी मानसिकता

इसके लिए तो हमें स्वच्छता के तौर-तरीके सीखने व अपनाने होंगे। हालाँकि, इसमें सबसे बड़ा अवरोध हमारी मानसिकता है; क्योंकि हम लोग तो अपनी सारी जिम्मेदारी से बचने के लिए सारी गंदगी नदियों में डाल देते हैं। गंगा को, यमुना को, नर्मदा को 'माँ' भी कहते जाते हैं और उनमें गंदगी के ढेर भी उँड़ेलते जाते हैं। कैसी विलक्षण है, अपनी मानसिकता। यही मानसिकता सबसे बड़ा अवरोध है। किसी भी स्वच्छता के इच्छुक समाज, देश व संस्था के लिए। इसके अलावा एक अवरोध और भी है। विकसित देशों में प्रत्येक वस्तु, पदार्थ-पैकेट, कन्टेनर, कार्टन में बंद मिलती है। उसकी पैकिंग

में अंकित होता है कि उस पैकिंग और उसमें निहित वस्तु के कचरे के किस-किस भाग को कहाँ-कहाँ, किस-किस तरह के कचरा विभाग में फेंकना है।

अपने देश में स्वच्छता करने, गंदगी न करने, कचरे को सही जगह डालने के लिए न्यूनतम शिक्षा, जानकारी व जागरूकता पैदा करने की जरूरत है। बेंगलुरू में कचरा प्रबंधन के लिए अच्छी पहल की गई है। हालाँकि इसके परिणाम अभी भविष्य के गर्भ में हैं। अपने गायत्री परिवार के लोग अपने क्षेत्र की आवश्यकता देखते हुए एक सार्थक पहल कर सकते हैं। अपने परिवेश व परिस्थिति के बारे में जागरूकता तो हममें से हरेक में होनी चाहिए, अन्यथा दीवाली पर्व में समृद्धि व संपन्नता की आकांक्षा व्यर्थ साबित होगी।

आवश्यक है इस गंदगी का सुप्रबंधन

जब अपना गाँव, शहर व सारा देश गंदगी का पर्याय बन गया हो, तब श्री-संपन्नता की उम्मीद करना निरर्थक है। विदेश में बसने वाले आज भारत की देव संस्कृति की चर्चा करने के बजाय जब यहाँ की गंदगी की चर्चा करते हैं तो बड़ी शर्मिंदगी का अनुभव होता है। प्रकृति की ओर से जिस देश को सर्वाधिक संसाधन और सौगात मिली है, प्रकृति ने जिसे सबसे ज्यादा संपन्न बनाया है, वह अपना प्यारा भारत देश अगर पूरा का पूरा हर जगह कचरे के ढेर में बदल चुका है, सड़ता दीखता है तो दोषी हम सब ही हैं।

भारत में गंदगी का आलम यह है कि अपने पवित्र तीर्थस्थल, सुरम्य पर्यटनस्थल भी इससे बचे नहीं हैं। हिमालय के सौंदर्य से परिचित कराने वाले हिमाचल-प्रदेश में कुल्लू, चामुंडा-धर्मशाला, मैक्लोइडगंज, धौलाधार पर्वतमाला के आस-पास के अन्य क्षेत्र प्रदूषण व गंदगी से पटे हैं। ये वे क्षेत्र हैं, जो प्राकृतिक सुषमा की दृष्टि से अद्‌भुत हैं। हमारे अनेक जलस्रोत यहाँ से प्रारंभ होते हैं। इतना ही नहीं, हमारी नदियाँ, हमारे जलस्रोत अपने स्रोतस्थल पर ही प्रदूषण व गंदगी से भरे पड़े हैं। बाढ़ आदि विभीषिकाएँ भी इसी का प्रतिफल हैं।

जब हिमालय की तराई के क्षेत्रों में जहाँ जनसंख्या और उसका घनत्व कम है, यह स्थिति है तो भारत के नगरों की दयनीय स्थिति पर खुद ही सोचा जा सकता है। कोई ऐसी जगह नहीं नजर आती, जिसे पूरी तरह से साफ-सुथरी कहा जा सके। उत्तर भारत का हाल तो भयावह है ही, दक्षिण भारत की स्थिति भी ठीक नहीं है। गाँव हों या शहर, ऐसे नजारे देखने को मिल ही जाते हैं, जिन्हें देखते ही उबकाई आ जाए। देश में सर्वाधिक स्वच्छता की उपाधि पाने वाले हैदराबाद, सिकंदराबाद जैसे महानगरों के आधुनिक परिवेश वाले स्थलों पर गंदगी के अंबार लगे होते हैं। सार्वजनिक मूत्रालयों, शौचालयों की स्थिति तो अनुभवी जानते ही हैं। पीक और थूक का हर जगह ऐसा कहर दीखता है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। दुर्गंध और गंदगी से भभकते-खौलते कूड़ेदानों से बाहर तक फैली गंदगी में कुत्तों का मुँह मारते मचाया जाने वाला उत्पात असहनीय ही है।

स्वच्छ भारत बने जन-आंदोलन

इस गंदगी की अव्यवस्था या कुप्रबंधन के चलते कचरा बीनने वाले कितने ही बच्चों का जीवन नष्ट हो जाता है। अपराध विशेषज्ञ तो यहाँ तक कहते हैं कि कितने सारे अपराध रैकेट इससे संबंध और इस पर केंद्रित होकर गतिशील रहते हैं। इस तरह की गतिविधियों में कितनों का ही जीवन बरबाद हो जाता है। अगर हम सब मिलकर इस गंदगी का प्रबंधन करने की पहल कर सकें तो देश को कितने प्राकृतिक उर्वरक मिल सकते हैं और रिसाइकिल हो सकने वाली वस्तुओं के सही प्रयोग द्वारा कितनी राष्ट्रीय क्षति बचाई जा सकती है। इस तरह पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा और उनके क्षय पर भी रोक लगेगी। स्वास्थ्य और जीवनरक्षक दवाओं पर होने वाला खरच कम होगा। प्रत्येक देशवासी का शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरेगा। विदेशी पर्यटकों की संख्या बढ़ेगी और इससे विदेशी पूँजी भी। देश की जो छवि सुधरेगी, वह एक अतिरिक्त लाभ होगा।

एक-एक व्यक्ति के थोड़े से जिम्मेदार हो जाने से कितने-कितने लाभ हो सकते हैं? यह इस संबंध में एक नई पहल करके देख सकते हैं। अन्यथा विधिवत् विदेशी साहित्य और अंतरराष्ट्रीय स्तर की फिल्मों-ऑस्कर विजेता-स्लमडॉग मिलेनियर के साथ-साथ मीडिया में समूचे भारत को सार्वजनिक शौचालय माना—कहा जाता रहेगा। भावी पीढ़ियाँ इसी गंदगी में अपना जीवन बिताएँगी और उनके पास साँस लेने के लिए पर्याप्त साफ स्थल और वातावरण तक नहीं होगा। अच्छे स्थलों की खोज में अमीर तो विदेश घूम आएँगे, लेकिन हम और हमारे परिवारों के लिए उसी त्राहि-त्राहि में शापित जीवन जीना पड़ेगा।

इस शापित जीवन से उबरने की पहल हमें ही करनी है। अभी कुछ महीने पहले ९ जून को संसद के दोनों सदनों में दिए गए अपने भाषण में महामहिम राष्ट्रपति जी ने माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के स्वच्छ भारत के इरादे को देश के सामने स्पष्ट किया। इसके मुताबिक 'महात्मा गांधी की १५०वीं जयंती पर वर्ष २०१९ तक स्वच्छ भारत के स्वप्न को साकार करना है।' प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी की यह सोच निश्चित ही सराहनीय है। लेकिन इस बार जनजीवन को अधिक जागरूक होने व अधिक जागरूक करने की जरूरत है। स्वच्छ भारत मिशन यदि सरकारी कार्यक्रम तक सीमित रहा तो बात नहीं बनेगी। इसे 'जन-आंदोलन' बनाना होगा। यह कार्य व्यापक सामाजिक आंदोलन में बदले, इसके लिए हम सबको मिलकर, गायत्री परिवार के हर सदस्य को एकजुट होकर शुरुआत करनी होगी।

भूलें नहीं पूज्य गुरुदेव के निर्देश

परमपूज्य गुरुदेव ने अपने व्यक्तित्व एवं विचार से हम सबको इसके लिए प्रशिक्षित किया है। उनके जीवन के कई घटनाक्रम ऐसे हैं, जो आज भी हमें स्वच्छ देश-स्वच्छ जीवन के लिए प्रेरित करते हैं। ऐसे ही एक घटनाक्रम की चर्चा गायत्री तपोभूमि के पूर्व व्यवस्थापक स्वर्गीय पं० लीलापत शर्मा ने शांतिकुंज कार्यकर्त्ताओं के साथ की थी।

बात तब की है जब पं० लीलापत जी परमपूज्य गुरुदेव के साथ कार्यक्रमों में जाया करते थे। ऐसे ही एक कार्यक्रम के सिलसिले में परमपूज्य गुरुदेव का झाँसी जाना हुआ। स्टेशन पर उन्हें लेने के लिए अनेक कार्यकर्त्ता आए हुए थे। रेलगाड़ी से उतरने के बाद गुरुदेव शौचालय की ओर गए। वहाँ देखा तो सब ओर गंदगी का साम्राज्य था। उन्होंने इसकी शिकायत किसी से करने के बजाय लीलापत जी से सफाई करने का सामान मँगवाया। सामान आ जाने पर उन्होंने धोती समेटी, कुरते की बाहें ऊपर कीं और लग गए सफाई करने।

पं० लीलापत जी को पहले तो कुछ पता ही नहीं चला, बाद में जब उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव को इस तरह शौचालय व मूत्रालय की सफाई करते देखा, तो वह भी लग गए, इस दृश्य को देखकर परमपूज्य गुरुदेव का स्वागत करने आए हुए कार्यकर्त्ता भी सफाई में लग गए। देखते-देखते झाँसी रेलवे स्टेशन का समूचा दृश्य बदल गया।

वहाँ के स्टेशन अधीक्षक को काफी देर से इस घटना की सूचना मिली। उसे जब बताया गया कि वेदों, उपनिषदों व दर्शन सहित समूचे आर्ष साहित्य के भाष्यकर्त्ता, महान विद्वान, परम तपस्वी संत शौचालय, मूत्रालय की सफाई में लगे हैं, तो वह हैरान रह गया। उसे विश्वास ही नहीं हुआ। वह अधिकारियों के साथ इस सत्य को देखने के लिए वहाँ पहुँचा, जहाँ गुरुदेव अपने कार्यकर्त्ताओं के साथ सफाई के कार्य में लगे थे। यह दृश्य देखकर वह चकित हुआ, चौंका।

उसे थोड़ी शर्मिंदगी भी महसूस हुई। काम समाप्त हो जाने पर उसने गुरुदेव से कहा—"हम स्टेशन पर सही ढंग की सफाई-व्यवस्था नहीं कर सके, इस वजह से आपको परेशानी हुई।" गुरुदेव ने हँसते हुए कहा—"इसमें परेशानी कैसी! स्टेशन जितना आपका, उतना मेरा। फिर स्टेशन ही क्यों, अब तो हम सब ईश्वर की कृपा से स्वाधीन हैं, समूचा देश हम सबका। हम सब इस देश को साफ रखेंगे तो यह देश साफ रहेगा, गंदा रखेंगे तो यह गंदा रहेगा।"

स्टेशन अधीक्षक ने कहा—"हम आपसे वायदा करते हैं जब तक हम इस स्टेशन पर नियुक्त हैं, सफाई व्यवस्था में कमी न आने देंगे।" इस पर परमपूज्य गुरुदेव बोले—"वायदा ही करना है तो यह कीजिए कि आप जहाँ भी रहेंगे, वहाँ पर साफ-सफाई की कमी नहीं रहने देंगे। फिर स्टेशन हो अथवा आपका गाँव या अपना घर।" स्टेशन अधीक्षक ने इस पर हामी भरी। इतनी देर में झाँसी स्टेशन गुरुदेव एवं कार्यकर्त्ताओं के श्रम से स्वच्छ हो चुका था।

इस घटना की चर्चा करने के बाद पं० लीलापत जी ने बताया—"गुरुदेव का कहना था कि हम सब अपने घर-गाँव-शहर और पूरे देश में सफाई रखें, यह तो आवश्यक है ही, इसके साथ यह भी आवश्यक है कि हम अपने स्वजनों, कुटुंबियों, गाँव-शहर के लोगों, अपनी नई पीढ़ियों को स्वच्छता के संस्कार दें।" परमपूज्य गुरुदेव के इस निर्देश का पालन आज हमें करना है। ध्यान रखें कि स्वच्छता होगी, तभी संपन्नता आएगी। तभी हमारा महालक्ष्मी पूजन सार्थक व संपूर्ण होगा। हमें इस दीपावली पर एकदूसरे को दीवाली की बधाई व मंगलकामनाएँ देने के साथ 'स्वच्छ भारत अभियान' को भी आगे बढ़ाना है। ❀

सद्गृहस्थ का जीवन

ऋषि-मुनियों को आरण्यक भी जो सुख दिला न पाया।
युगऋषि ने वह सुख गृहस्थ में पाना हमें सिखाया।

सद्गृहस्थ में प्यार और सहकार जनम लेते हैं,
दो सहचर जीवन-नैया को मिल-जुलकर खेते हैं,
वहाँ न होता कर्त्तव्यों का किसी समय बँटवारा,
वृक्ष-वल्लरी से वे दोनों बनते सबल सहारा,

उन पर होती परमेश्वर की सदा सुमंगल छाया।
युगऋषि ने वह सुख गृहस्थ में पाना हमें सिखाया।

उनको विचलित कभी न करतीं जीवन में विपदाएँ,
हाथ थामकर सह लेते हैं वे विपरीत हवाएँ,
वहाँ त्याग से आत्मतृप्ति की विमल भावना भरती,
दया, क्षमा, करुणा, ममता ही सदा दृष्टि से झरती,

उन्हें नहीं लगता वसुधा पर कोई कहीं पराया।
युगऋषि ने वह सुख गृहस्थ में पाना हमें सिखाया।

होती है पूरे समाज की घर-परिवार इकाई,
कला सफल जीवन की इसमें जाती सहज सिखाई,
है सौभाग्य, जिन्होंने पाया सद्गृहस्थ का जीवन,
संयम, सेवा, सहिष्णुता का मिलता जहाँ प्रशिक्षण,

जहाँ संत-ब्राह्मणवत् जीवन जाता है अपनाया।
युगऋषि ने वह सुख गृहस्थ में पाना हमें सिखाया।

जहाँ शांति घर में हो, बाहर वही शांति ला पाते,
दृढ़ रिश्ते ही इस समाज में अपनापन फैलाते,
ऐसी कोशिश करें कि हम भी सद्गृहस्थ बन जाएँ,
उच्चादर्शों से प्रेरित हो निज परिवार बनाएँ,

फिर परिवार-परिधि में होगा सारा जगत समाया।
युगऋषि ने वह सुख गृहस्थ में पाना हमें सिखाया।

—शचीन्द्र भटनागर